वर्ष ८, अंक ८

श्रीकृष्णाय नमः

वैशाख पूर्णिमा १९९०

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह भावजी जेठवा कोलरे प्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर भंवरभाई नारायणभाई देसाई महुवा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

विषय सूची

सं० लेख लेखक पृष्ठ

१. वेदोपदेश २२५

२. पुराणगाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी २२६

३. लहर [ले० श्री० बी० एल० सराफ बी० ए, एल एल० बी २२९

४. तेरा भय (कविता) [ले० श्री बलदेव प्रसाद जी मिश्र २३३

५. अद्वैतामृत २३३

६. ईश्वर भक्ति से महान् लाभ [ले० विद्यालंकार पं० रामकुमार जी २३५

७. शरणागति [ले० श्री शर्मा जी भारद्वाज साहित्यरत्न २३७

८. श्री भगवच्चर्चा (कविता) [ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी २४०

९. भक्ति का महत्त्व [ले० श्री गोपाल प्रसाद जी शर्मा २४२

१०. योग-साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती २४४

११. मिलन (कविता) [र० श्रीमती ब्रज कुमारी प्रभाकर २४८

१२. एक चेष्टा से कई उपदेश [ले० भक्त रत्न श्री मथुरा प्रसाद जी २४८

१३. श्रीराम चरित्र मानस की कथा किस कल्प की [ले० श्री महावीर प्रसाद जी बजरंगबली ... २५०

१४. विश्व जाल [ले० श्री "दिनेश" २५२

१५. सदुपदेश [ले० श्री कृष्ण गोपाल जी माथुर २५५

१६. भजन २५६

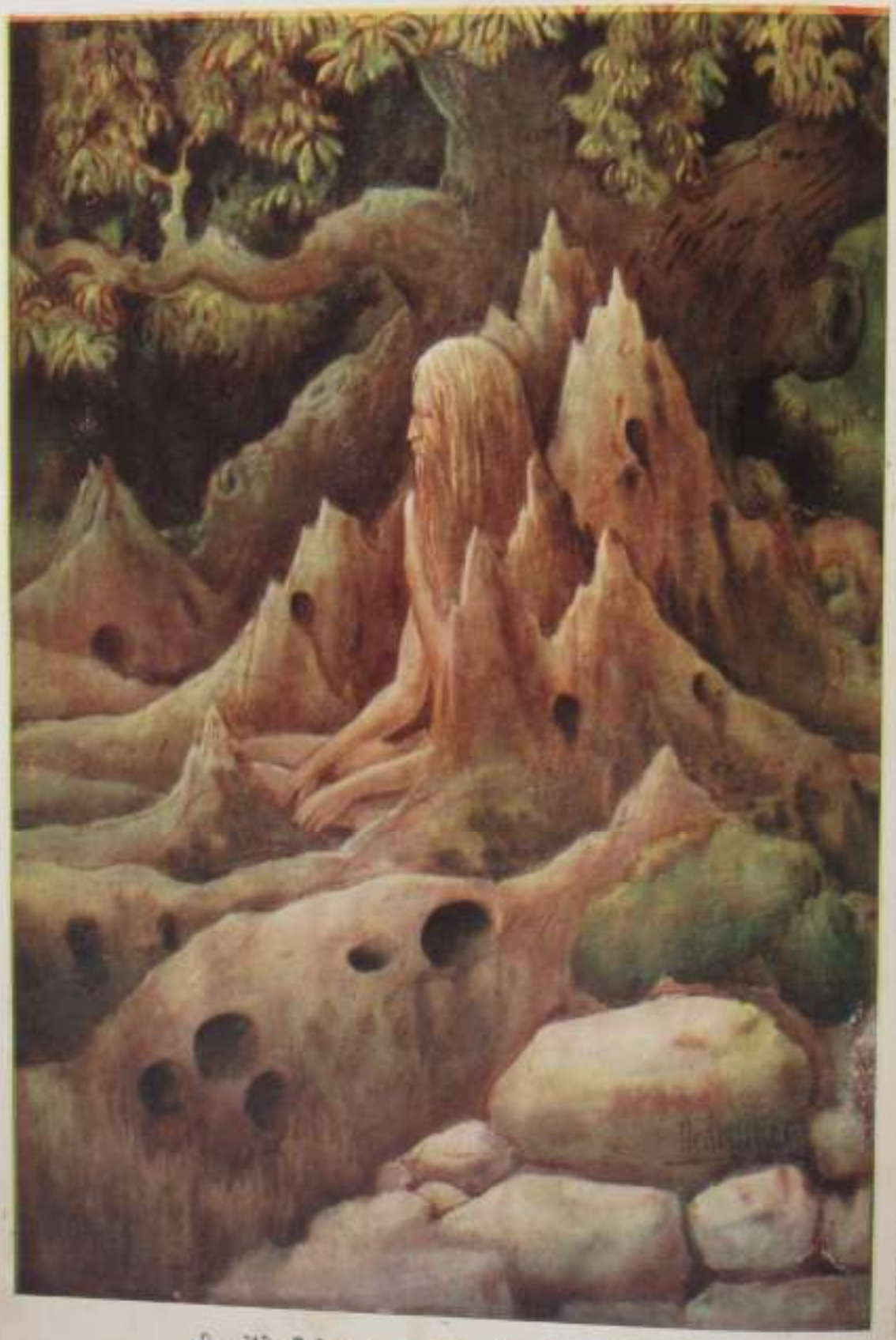

दीमकोंसे घिरे हुए राम-नाम-लीन श्रीवाल्मीकिजी

GITA PRESS, GORAKHPUR.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, वैशाख पूर्णिमा, अप्रैल १९३४ | अंक ८ पूर्ण संख्या ९२

वेदोपदेश

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतिः।
यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥

महान् कपर्दी, जटाधारी और वीरों के विनाश स्थान रुद्र को हम माननीय स्तुति अर्पण करते हैं जिससे द्विपद चतुष्पद स्वस्थ रहें और हमारे इस ग्राम में सब लोग पुष्ट और रोग शून्य रहें ॥१॥

मृला नो रुद्रोत नोमयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुराये जे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतुषि ॥

रुद्र तुम सुखी हो हमें सुखी करो। तुम वीरों के विनाशक हो, हम नमस्कार के साथ तुम्हारी परिचर्या करते हैं पिता या उत्पादक मनु ने जिन रोगों से उपशम और जिन भयों से उद्धार पाया था रुद्र तुम्हारे उपदेश से हम भी वह पावें ॥ २ ॥

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥

रक्षण के लिये हम दीप्तिमान यज्ञसाधक कुटिल गति और मेधावी रुद्र का आह्वान करते हैं। वह हमारे पास से अपना क्रोध दूर करें। हम उनका अनुग्रह चाहते हैं ॥ ३ ॥

मानस्तोके तनये मान आयौ मा नो गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥

रुद्र हमारे पुत्र, पौत्र, मनुष्य, गौ और अश्व को नहीं मारना रुद्र क्रुद्ध होकर हमारे वीरों की हिंसा नहीं करना, क्योंकि हव्य लेकर सदा ही हम तुमको बुलाते हैं ॥ ४ ॥

अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥

हमने रक्षा की कामना से कहा है। रुद्र उन देवों को नमस्कार है। मरुतों के साथ रुद्र हमारा आह्वान सुनें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को पूजित करें ॥५॥

पुराण गाथा

दिति कश्यप संवाद

(ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी)

नारद जी से सूकर रूप हरि की कथा सुन कर शौनक जी ने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया:-

शौनक-हे मुने! यज्ञ मूर्ति हरि ने पृथिवी का उद्धार करते समय आदि दैत्य हिरण्याक्ष का वध क्यों किया और हे ब्रह्मन्! उन दोनों का किस कारण से युद्ध हुआ?

नारद-हे शौनक! यह आप का प्रश्न बहुत ही उत्तम है, क्योंकि हरि की जिस कथा का आपने प्रश्न किया है, यह कथा अत्यन्त पावन है और मनुष्यों के मृत्यु के पाश को काटने वाली है। यह कथा पूर्व में ब्रह्मा जी ने देवताओं को सुनायी थी, एक बार मरीचि के पुत्र कश्यप ऋषि सूर्य अस्त होने पर संध्या के समय यज्ञपति भगवान का यजन करके अग्निशाला में बैठे हुए थे, तब उनकी पत्नी दक्ष की पुत्री दिति ने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से इस प्रकार प्रार्थना की:-

दिति-हे ब्रह्मन्! अपनी सपत्नियों को सन्तान वाली और अपने को संतान रहित देख कर मेरा मन जलता है, इसलिये आप मुझे भी संतान प्रदान कीजिये! भर्ता से मान पाने वाली स्त्रियों का

लोकों में यश फैलता है, क्योंकि आपके समान पति ही उनकी कोख में से पुत्र रूप से उत्पन्न होता है। हम सब बहिनों को हमारे पिता दक्ष बहुत ही प्यार करते थे, उन्होंने हम सब से एकान्त में अलग पूछा था कि कौन किस को वरना चाहती है। पश्चात् हम सब तेरह बहिनों का अभिप्राय जान कर उन्होंने समान शील वाले पतियों के साथ हमारा विवाह कर दिया। हे कमललोचन! मेरी कामना पूर्ण कीजिये, हे भूमन्! आप के समान महान् पुरुष दुखियों का दुःख दूर करते हैं, दुखियों का आप सरीखों के शरण आना निष्फल नहीं होता। हे आर्तहर स्वामिन्! मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।

कश्यप—हे भीरु! इतनी अधीर मत हो, जैसा तू चाहती है, वैसा ही मैं करूंगा। भला! जिस स्त्री से धर्म, अर्थ और काम तीनों की सिद्धि होती है, उस स्त्री की इच्छा कौन पूर्ण नहीं करेगा। जैसे जलयान से समुद्र को तर जाते हैं, इसी प्रकार स्त्री वाला गृहस्थ अन्न दान आदि सर्व आश्रमों के फल को पाकर दुःख रूप समुद्र से तर जाता है। हे मानिनी! श्रेयाभिलाषी के लिये जो आधा देह है, जिसमें अपना बोझ रख कर पुरुष ज्वर से रहित हो जाता है, और जैसे दुर्गपति डाकुओं को जीत लेता है इसी प्रकार जिसका आश्रय कर के दुर्जय इन्द्रिय रूप शत्रुओं को गृहस्थ सहज में ही जीत लेता है, ऐसी उपकार करने वाली का पूर्ण प्रत्युपकार मैं और अन्य गुण ग्राही पुरुष आयु भर में भी नहीं कर सके, तो भी पुत्र की उत्पत्ति के लिये तेरी यह कामना मैं पूर्ण करूंगा, एक मुहूर्त भर ठहर जा, जिससे शिष्ट पुरुष मेरी निन्दा न करें! यह समय घोर तम है, इस में भूतेश्वर के अनुचर भूत विचरते हैं। हे साध्वी! यह सन्ध्या का समय है, इसमें भूत भावन, भूतराज भगवान् रुद्र अपने पार्षदों सहित घूम रहे हैं। श्मशान की वायु मंडली की धूल से अटे हुए, फैले हुई प्रकाशवान् जटा वाले भस्म से ढकी हुई निर्मल सुवर्ण की सी देह वाले तेरे देवर और मेरे साढू तीन नेत्रों से हम को देख रहे हैं। लोक में इनको अपना पराया आदरणीय, निन्दनीय कोई नहीं है, भोग कर त्यागी हुई इनकी माया का विभूति को हम सरीखे महा प्रसाद जान कर ग्रहण करने की इच्छा से अनेक प्रकार व्रतों से उनकी आराधना करते हैं। चतुर पुरुष अपने अविद्या का पटल को भेद न करने की इच्छा से इनके निर्दोष चरित्रों को गाते है। साम्यता और अतिशयता को छोड़ कर स्वयं पिशाच के समान विचरते हैं और सत्पुरुषों की गति है यानी सत्पुरुष ही इनको प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य दुर्भागी है, सत्यासत्य के विवेक से रहित हैं, कुत्तों के भोजन इस शरीर को ही आत्मा मान कर उसके सजाने में लगे रहते हैं, वे इनके चरित्र को देख कर हंसते हैं। इनका चरित्र अतर्क्य है, ब्रह्मादिक जिन की बनायी हुई मर्यादा का पालन करते हैं, इस विश्व के जो कारण हैं, माया जिनकी आज्ञाकारिणी है, इनका पिशाचचर्या हो, परमेश्वर की यह लीला अतर्क्य है।

नारद—हे शौनक! कश्यप के इस प्रकार समझाने पर भी काम पीड़ित दिति ने वृषली के समान निर्लज्ज हो कर उनका वस्त्र पकड़ लिया, तब वे भार्या की विकर्म में दृढ़ रुचि जान कर भावी को नमस्कार करके उसके साथ एकान्त में चले गये, पश्चात् वहाँ से लौट कर स्नान करने के बाद प्राणायाम करके मौन होकर सनातन ज्योति का ध्यान करते हुए ओंकार का जप करने लगे। दिति अपने निन्दित कर्म से लज्जित हो कर

ब्रह्मर्षि के पास जा कर नीचा मुख करके इस प्रकार कहने लगी।

दिति-हे ब्रह्मन्! रुद्र भगवान् भूतों के पति हैं, मैंने उनका अपराध किया है, वे मेरे गर्भ को नष्ट न कर दें, मैं अपना अपराध क्षमा कराने के लिये उनसे प्रार्थना करती हूं-

हे जगत् पते! आप को नमस्कार है, आप दुःखों के नाश करने वाले हैं, इसलिये वेदवेत्ता आप को रुद्र कहते हैं, आप को नमस्कार है! आप देवों के देव हैं, इसलिये महादेव कहलाते हैं, आप अपनी आज्ञा उल्लंघन करने वालों को दण्ड देते हैं, इसलिये विद्वान् आप को उग्र कहते हैं आप को नमस्कार है! सकाम प्राणियों को आप फल के देने वाले हैं, इसलिये वेदज्ञ पुरुष आप को मीढुष कहते हैं, निष्काम भक्तों का आप कल्याण करते हैं, इसलिये आप का नाम शिव है, वस्तुतः आप न्यस्त दण्ड हैं यानी आपने दण्ड त्याग दिया है, फिर भी दुष्टों को आप दण्ड देते हैं, इसलिये धृत दण्ड हैं, संहार के समय आप क्रोध करते हैं, इसलिये मन्यु कहलाते हैं, आप को नमस्कार है! हे माम! (मेरी भगिनी के भर्ता) आप ने मदंगी व्याध पर दया करी थी, इसलिये आप दयालु हैं, स्त्रियों के देव हैं, सती के पति हैं, स्त्रियों के स्वभाव को आप जानते ही हैं, इसलिये मुझ पर प्रसन्न हूजिये और मेरा अपराध क्षमा कीजिये!

नारद-हे शौनक! दोनों लोकों के भोगों की देने वाली संध्या के नियम से निवृत्त हो कर प्रजापति कश्यप भार्या से इस प्रकार कहने लगे-

कश्यप-हे अमङ्गे! तेरा मन मलिन होने से, मुहूर्त के दोष से, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने को और देवताओं की अवहेलना करने से तेरे गर्भ से दो अधम पुत्र उत्पन्न होंगे, जो लोक पालों सहित तीनों लोकों को बारम्बार कष्ट देंगे। जब वे दीन और निरपराधी प्राणियों को मारेंगे स्त्रियों को दण्ड देंगे, और महात्मा उनके ऊपर क्रोध करेंगे, तब लोकभावन विश्वेश्वर भगवान् क्रोध करके अवतार लेंगे और जैसे इन्द्र ने पर्वतों को काटा था, इसी प्रकार उनको मारेंगे।

दिति-हे भगवन्! चक्रधारी, उदार भुजा-वाले साक्षात् भगवान् के हाथ से मेरे पुत्र भले ही मारे जांय परन्तु ब्राह्मणों के कोप से न मारे जांय, ऐसा मैं चाहती हूं, क्योंकि प्राणियों के भय देने वाले और ब्रह्मदण्ड से दग्ध हुए नारकी जहां २ जिस २ योनि में जाते हैं, वहां २ दुःख ही पाते हैं, ईश्वर उनके ऊपर अनुग्रह नहीं करता, इसलिये ब्रह्मदण्ड से मेरे पुत्र न मरने चाहियें।

कश्यप-हे भामिनी! तू ने युक्तायुक्त का विचार करके किये हुए अपराध का शोक कर लिया है, शोक के कारण से पश्चात्ताप कर लिया है, भगवान् शिव को तू ने मान दिया है और मेरा भी आदर किया है, इसलिये तेरे पुत्रों में से एक पुत्र का पुत्र श्रेष्ठ पुरुषों में मान्य होगा और उस का पावन यश भगवान् के यश के समान गाया जायगा। जैसे खोटे सुवर्ण को अग्नि के योग से सुवर्णकार शुद्ध कर लेते हैं, इसी प्रकार तेरे पौत्र के निर्वैरादि शील का अनुकरण करके साधु लोग अपने अन्तःकरण को शुद्ध किया करेंगे। हे सुभगे! जो भगवान् स्वदृक् यानी स्वयं प्रकाश हैं, जिनके प्रसाद से यह विश्व प्रसन्न होता है, जिनका यह विश्व स्वरूप है, वे भगवान् तेरे पौत्र की अनन्य भक्ति से संतुष्ट होंगे, क्योंकि वह महा भागवत, महात्मा यानी अपरिच्छिन्न दृष्टि वाला, महा प्रभाव वाला, महान् पुरुषों में महान् बढ़ी हुई भक्ति से चित्त को शोधन करके वैकुण्ठ में यानी हरि में

लगा कर देहादि के अभिमान को त्याग देगा। हे दक्षनन्दनी! तेरा पौत्र विषय भोगों में अनासक्त, सुन्दर स्वभाव वाला, धैर्य आदि गुणों की खानि, पराई समृद्धि देख कर प्रसन्न होने वाला, पराये दुःख को देख कर दुःखी होने वाला, निर्वैर, जगत् के शोक का हरने वाला, ग्रीष्म ऋतु की ताप का चन्द्रमा के समान हरने वाला होगा और बाहर भीतर कमल नेत्र, किरीट कुण्डल से शोभित मुख वाले, अपने भक्तों की इच्छा से उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिये शरीर धारण करने वाले, श्रीललनाललाम भगवान् को सर्वत्र देखेगा।

नारद-हे शौनक! भागवत पौत्र का होना सुन कर दिति बहुत प्रसन्न हुई और कृष्ण के हाथ से पुत्रों का मरणा जान कर उत्साहित मन वाली हुई क्योंकि हरि के साथ युद्ध करने से उनकी कीर्ति संसार में फैलेगी और सद्गति भी प्राप्त होगी। दिति ने देवताओं को पीड़ा होने की शंका से शत्रुओं के तेज को नाश करने वाले प्रजापति कश्यप के तेज को सौ वर्ष तक धारण किया।

पाठक! दिति के गर्भ में कौन थे, इसका वर्णन नारद जी ब्रह्मा और देवताओं के संवाद से करेंगे। शौनक के प्रश्न का उत्तर भी आगे स्पष्ट कहेंगे। उसको मैं आगे के लेख में दिखलाऊंगा, इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि समस्त कर्म काल का विचार करके करने चाहियें, ऐसा न करने से फल अच्छा नहीं होता, प्रत्युत अशुभ फल प्राप्त होता है, जैसा कि दिति को हुआ। सच कहा है:-

दो०-बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।
सोच समझ कारज करे, सो पण्डित कहलाय॥

लहर

(ले० श्री० बी० एलसाक बी. ए., एल एल. बी.

हमारा विश्व भी प्रकृति की प्रमोद लहर है। एक क्रीड़ा-हास्य है। मानव जीवन भी तो एक लहर है शान्ति ग्राही उदधि के वक्षस्थल पर शान्ति शयन ही उसकी अन्तिम अवस्था है। क्षुब्ध लहर की उग्रता पूर्ण शान्ति में परिवर्तित हो जाना ही संसारी जीवों के मानव जीवन का अन्त है, जीवन लहर की विशालता अशान्ति की छोटी छोटी अन्तिम लहरों से निर्मित हुई है।

दया, प्रेम, उल्लास अदम्योत्साह, आशा, असंतोषादि की छोटी छोटी उछल कूद इस जीवन लहर के निर्मित होने के सहायक अंग हैं, चाहे वह उदासी की हो चाहे उदासीनता की हो या कोई अन्य मनोवृत्ति की पर वह भाव-वाही लहर प्रवाहित अवश्य होती रहती है।

सौरभ भरी एक लहर अन्धकार युग में ज्ञान का सन्देश देती निकलती जाती है, और फिर प्रकाशवाही लहर के लिये स्थान खाली कर अन्तर्लीन सी हो जाती है औत्सुक्य उसकी बाट जोहने लगती है पर वह शक्तिशाली सौरभ लहर विश्व को जगाने के लिये ही है।

देवी के इस तटवर्ती मन्दिर की ओर भी तो श्रद्धा और भक्ति में ओत प्रोत लोटती हुई लहरें इस जलाशय से आती रहती हैं। लहरें अपने को देव मन्दिर का सेवक समझती हैं उनके बीच में कोई यवनिका ठहर नहीं पाती, भक्ति का हृदय जब उमड़ता है, तब देवी के चरणों में लिपट कर ही वह नम्र होता है यद्यपि वहां पहुंच जाने पर उसका

अन्त नहीं जाता देवी के आयतन के तीर पर वह श्रद्धा-नमन कर उसके चरण चूम कर आनन्दोत्फुल्ल उछलती हुई लौट जाती है और फिर लौट आती है। उस उल्लास में समय परिवर्तन अवश्य करदेता है किन्तु लहर का अस्तित्व समूल नष्ट नहीं हो जाता।

विश्व प्रकृति की प्रमोद लहर है और विश्व का इतिहास लहरों के जन्म, उत्थान, लय, परिवर्तन, घात, प्रतिघातादि का इतिहास है, विश्व का इतिहास: उदधि प्रलय कालीन तांडव नृत्य में भी लहरों से क्षुब्ध रहता है। इस सागर में महान आत्मायें जागिरीं कहीं समय ने भी उन्हें ज़ोर से वहाँ फेंक दिया। थोड़ी देर हाथ पैर चलाकर उन्होंने चारों ओर कतिपय किन्तु बड़ी बड़ी अशान्त लहरें उठादीं पर वे लहरों पर अधिक दिनों तक न ठहरे तट पर से फेंका गया पत्थर भी तो कुछ लहरों को जन्म देकर अन्त में तलशायी हो जाता है। वे काल के अनन्त गर्भ में लीन हो गये पर उनकी समाधि से उठने वाली अनन्त शक्तिशाली लहरें थोड़ी सी रूपान्तरित होने पर भी जीवित बनी रहीं और उस जल के साम्राज्य को जीवित होने की साक्षी देती रही जैसे जैसे संसार की वायु ने उनका साथ दिया तैसे तैसे उनकी शान्ति वृहद् हो कर भयंकरता धारण करने लगी।

कर्तव्य परायणता, धर्म, मर्यादा और न्याय की लहर अयोध्या के अन्तःपुर से जन्म लेकर लंका तक पहुंची। बीच का सारा कुत्सित दानवी साम्राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया, लंका के सुवर्ण महल और अजय अनाचार दुर्ग की दीवारों को उसने अपने थपेड़ों से उलट पुलट कर दिया। अपने गर्भ में लीन कर लिया, अत्याचार का एक भी स्मृति स्थंल इस लहर से ऊपर अपना अस्तित्व कायम न रख सका। उग्रसेन कुल कलंकी ने भी अमानुषी दमन तथा अनाचार की लहर उठादी विश्व की वायु ने उसका साथ दिया और कुछ दबे पैर विरोध भी किया, किन्तु उसके मार्तंड ने हवा को निस्तेज और हल की करदी। गाम्भीर्य रहित हवा अधिक समय तक उसके सामने न ठहर न सकी। मनुष्यों के हाथ कांप रहे थे। मृत्यु की विभीषिका नेत्रों के सम्मुख नाचती थी, अर्जुन की कातरता को वहाँ ले जाने वाले योगी के कर्मयोग की लहर ने दमन राज्य डुबा दिया। सौ कौरवों के हाथ से बाग डोर पांच पाडवों के हाथ में जमा दी गई। कौरवों ने माथा दिया, भला कंस कब तक ठहर सकता था। उसके पृष्ट पोषक भी सहम गये, लहर में बह गये, आज तक उनका पता नहीं पर कौन जानता है कि इस विराट संसार में और कितनी छोटी बड़ी लहरें उठीं, एक प्रेमान्ध पतिंगे का दीपक पर आत्म समर्पण भी तो एक लहर को जन्म देता है।

चारवाक की मनोहरिणी आधिभौतिक स्वार्थ वाद की मजा मौज से समृद्ध लहरें शंकर के मायावादी वेदान्त प्रहार के कारण लौट पड़ी, कभी २ लहरों को हवाने विपुल डरावना रूप दे दिया। किन्तु लहरों का भयंकर रूप धारण करना ही प्रलय का पूर्णाभास है। इन प्रकाँड लहरों का भयंकर नाद कानों में पहुंचते ही प्रलय दृश्य नेत्रों के आगे नाचने लगता है, विश्व ने इन प्रलयंकारी लहरों के रूप में कई बार अपनी गति चेष्टा और आकृति तथा प्रकृति बदल दी प्रकृति कई बार खिल खिला कर हंसी पर उस अट्टहास को हमने क्रान्ति कहा। प्रबल लहरों ने किले की दीवारों पर सरमारा किले छिन्न भिन्न हो गये, चक्रवर्ती राष्ट्र

के समय भी प्रवाह में बह गये लहरों का जल उनके बनाये स्मृतिखण्डों के ऊपर से निकल गया, वेगवती लहरें अपने कार्य सम्पादन के बाद धीरे धीरे चलने लगीं, क्रान्ति के बाद लहरों ने स्थिरता धारण की पर पुराने स्मारकों का स्थान नये किलों और विशाल भवनों ने ले लिया पुराने स्मारकों पर नये विराट भवनों का जन्म विश्व की प्रलय यातनाओं का कारण हुआ पर लहर का स्वभाव ही अशान्त है।

विश्व में संस्थाओं, महात्माओं किलों और विशाल भवनों का जन्म लहरों के उत्थान की घोषणा मात्र है। इनके जन्म के बाद ही सिद्धान्त वाहिनी नौका में समुद्र में लहरें उठतीं और उन्हीं पर तैरने लगती हैं। कभी कभी लहरें आपस में भिड़जाने के बाद कार्य क्षेत्र में थोड़े समय को विश्राम लेने लगती हैं प्रायः विलीन हो जाती हैं, विश्व में विजय पाने वाली लहरों का उत्पादक और पोषक कभी दानवी बल रहा कभी सात्विक धर्म तेज रहा और दानवी बल भी कभी कभी विजयी सा दिखने लगा।

महाभारत और बुद्ध भगवान् के बाद का प्रायः सारा भारत दानवी शक्तियों के संघर्ष से भरा पड़ा है। उस युग के अन्ध विश्वासी, संकुचित हृदय, और अकर्मण्य भारत ने शान्ति ग्राही सागर में विषाद स्वप्न देखने वालों को जन्म दिया। भव-भूति, बाणभट्ट, कालिदास इत्यादि ने गौरवान्वित भारत का दर्शन किया। अपने स्वप्न का आभास कुछ हमें भी कराया, पर लहर किसी के लिये विलम्ब नहीं करती कुछ समय के अनन्तर मूढ़ता और विचार स्वातंत्र्य में, स्वप्न और वास्तविकता में भी संघर्ष होता रहा।

सीधी सादी दैवी प्रकृति कुछ काल को जबरन असि धारण कर प्रवंचक बर्गों को अपना शौर्य दिखा दैवत्व के प्रभुत्व में ही अपना अस्तित्व सफल समझ अपने दैवत्वरक्षण के लिये एक रम्य कुटी बना धारणा से घेर निश्चिन्त हो बैठी। किन्तु शान्ति दैवी हो या दानवी पूर्णता वहां भी नहीं वहां भी संघर्ष है प्रवाह है, वासना और वाछां है, चाहे वह दिव्य हो चाहे राक्षसी भिन्न सभ्यतावलम्बी विजेताओं की क्षणिक वृत्ति ने या उनके दानवी प्रपंच ने साम्राज्य पिपासा की लहर उठादी शान्ति निद्रा और मूढ़ता विलीन हो गई सिन्धु लहराने लगा हमारी आंखें चकाचौंध होगई विश्व में लहर उठाने वाले चट्टान थे अचलता में किन्तु उनकी अचलता सजीव थी। यही कारण है कि उनका असर शताब्दियों तक स्फूर्ति देता रहता है। एक तट वर्ती साम्राज्य भी कभी २ इन लहरों में उथल पुथल हो जाता है। न्याय दुर्ग बना उस पर सेना खड़ी कर विश्व से सम्बन्ध जोड़ देना इस बात की स्पष्ट साक्षी है। विश्व की लहरें उस पर अपना प्रभाव डाले बगैर नहीं रहसकी। विजय और पराजय का हल हवा पर ही रह गया है।

यम सदन की दानवी, रूक्ष और भूखी हवा स्वर्ग की उस प्रेम और माधुर्य-सौरभ भरी हवा के स्पर्श का अनुभव हमारी आत्माओं में नहीं होने देती। न्यायानुयायी और सीधे साम्राज्य इस विश्व व्यापी दुर्नीत लहर के विरुद्ध खड़ हो पाशवी शक्तियों से भिड़ नहीं सके। इस विराट लहर में हजारों दुर्नीति के भंवर हैं जिनमें सैंकड़ों निर्दोष नष्ट हो गये और कई वहीं पड़े पड़े कराह रहे हैं। सहायता के हाथ बढ़ाते हैं पर हृदय हीन संसार के पास उनके सतृष्ण नेत्रों को शान्ति देने को कुछ नहीं। विश्व खड़ा खड़ा बाजू से उनकी ओर केवल देख रहा है। न्यायी का क्रोध भी उसी की वक्र दृष्टि

और भुजाओं के फड़कने तक पहुँच कर अन्त हो जाता है। विश्व-आन्तक निर्दोष और धार्मिकों के पहले पकड़ उठाने वालों को भी दहला रहा है। न्याय की पताका उड़ाने वाले धार्मिक राष्ट्र इसी मरीच बालुका (Quicksand) में धँस गये वहां से निकलने का रास्ता भी नहीं। स्वार्थ लिप्सा वह प्रेम की डोर नहीं जिसे पकड़ कर बहता हुआ राष्ट्र बाहर निकल आवे।

लहरें सदा ही विश्व में जीवों, दुर्गों और सिद्धान्तों के साथ प्रलय नृत्य नाचा करती हैं, विजय और आशा की नौका पर बैठ कर डालने वालों का जीवन भी तो लहरों ने अनिश्चित कर दिया है। न जाने कब न्यायी या अन्यायी किसका सिर ये लहरें ले जाकर दुर्ग की दीवारों पर मारदें। लहरों को उठाने वाले जीव ही हैं पर लहर सदा परतन्त्र नहीं रहती, शक्ति प्रसूता लहर कभी कभी अपने पोशकों को ही पछाड़ देती है। लहरों का अनियन्त्रित और भयंकर होना प्रलय का चिन्ह है। यद्यपि लहरों के जन्म से ही प्रलय नृत्य है। फ्रान्स में क्रान्ति की लहर क्रान्ति विधान कों के हाथ से निकल गई सैंकड़ों द्वारों पर धूल उड़ गई। मानव जीवन के क्षणस्थायी स्वभाव पर आदमी उदासी भरे नेत्रों से देखने लगे। न्याय और अन्याय को तोलने वालों ने तराजू फेंक दी। मानुषी जीवन के तौल, के मूल्य, पिशाचों को बेच दिया गया। लहर के उत्पादकों ने शायद इतना भयंकर चित्र अपने हृदय में भी न खींचा था। प्रायः उनका हृदय न्याय पाने की लालसा के सात्विक क्रोध में ही उन्मत्त था किन्तु लहर का बल हवा से मस्त नौकाओं पर ज्ञान हाथ में लिये सैर करने वाले सिद्धान्त के अज्ञानान्ध टीकाकारों के हाथ में था। भिक्षुओं ने बुद्ध भगवान के धर्म को कैसा रूप दिया कि वह अन्त में शंकर से टकरा गया। इस टकराये हुए धर्म की भयभीत लहर इस तरह से लौटी कि उसे श्वेत शिखरधारी उत्तुंग गिरिमाला को पारकर चीन जापान में ही दम मिला। लहर के प्रतिपक्षी न होने वाले पराजय के मृत्यु मुख में नहीं पहुंचते संसार्य विजय का अन्तिम उल्लास भी उनके भाग्य में नहीं इसी लिये बिना लहर का जीवन एक धन्य जीवन मात्र है, वहां भाव को स्थान नहीं।

ऐसा हृदय तड़ाग अपनी शान्त जल पूरित अकर्मण्य नीरवता में किसी तरह काल-क्षेप का स्वप्न ही देखा करता है। लहरों के लिये बड़ा विस्तृत हृदय चाहिये जहाँ तरंगें खेलती रहा करें। बगैर लहर के प्रायः हृदय हीन जीवन का विश्व के कर्मों से क्या सम्बन्ध? ऐसे जीवित पशु को जीवन का क्या अर्थ? छोटासा हृदय ले एक तड़ाग में घूमने वाले जीव का जीवन स्मशान भूमि की अप्रिय तथा ऊबड़ शान्ति से शासित है। जहाँ लहरें नहीं आतीं जहां उनसे युद्ध करने का अवसर ही नहीं वह जीवन कितना निर्जीव है। जिस जीवन में लहरें उठती हैं उसके आनन्दोल्लास में भी पूर्ण अभयता नहीं परन्तु अदम्य साहस से प्राप्त क्षणिक शान्ति अवश्य है।

किन्तु प्रकृति के पटाक्षेप में, प्रकृति के पुरुष में लीन होने में या उसकी गोद में निस्तब्ध हो कर अनन्त शयन में सारे संघर्ष की लीला का संहरण भी छुपा हुआ है। वह स्थिति मानवी लिप्साओं की उछल कूद के कितने उस पार है।

तेरा भय

(ले० श्री बलदेव प्रसाद जी मिश्र)

तेरो भय मानि पौन लेत न प्रचण्ड सांस ,
तेरो भय मानि थान त्यागैं ना नछत्र भीर ।
कवि 'राज हंस' मेरे श्याम ! भय तेरो मानि ,
तजत न रंच मरजादहि उदधि नीर ।
तेरो भय मानि सृष्टि थिति औ प्रलय करि ,
विधि हरि हर कर्म रेख हैं गहे गभीर ।
तेरो भय मानि रवि शशि न तजत पंथ ,
तेरो भय मानि बनी चरम-धुरी है धरि ॥२

अद्वैतामृत

(गतांक से आगे)

चित्तवृत्ति-हे विवेकाश्रम ! तूने चिदात्मतत्व का युक्ति-प्रमाण पूर्वक अच्छे प्रकार से निरूपण किया है। अब आत्मा की आनन्दता को युक्ति प्रमाण पूर्वक वर्णन करो।

विवेकाश्रम-हे चित्तवृत्ति ! तू विषयों के त्याग किये बिना ही आत्म महासुख की कामना करती है। विषय त्याग किये बिना आत्मानन्द कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। तू विषयों से उत्पन्न क्षणिक आनन्दों में फंसी हुई है। फिर आत्म सुख को कैसे जान सकती है ! पुरुषों का मन आम्र फल के समान है। जिस प्रकार कच्चा आम्र विकारों का करने वाला है, इसी प्रकार अशुद्ध मन भी दुःखों का देने वाला है तथा शुद्ध मन ज्ञान की प्राप्ति करा कर महासुख प्रदान करता है। जिसकी जिह्वा पित्त दोष के कारण रस के अनुभव करने में असमर्थ हो गई है वह पुरुष गुड़ की मिठास को नहीं जान सकता। इसी प्रकार दुष्ट इन्द्रियों वाला पुरुष अपने अभीष्ट विषय को नहीं जान सकता। जिस प्रकार कामला रोग के कारण श्वेत वस्त्र की शुक्लता का ज्ञान नहीं हो सकता इसी प्रकार विषय जन्य आनन्द का अनुभव आत्मानन्द के ज्ञान को नहीं होने देता। अतएव अज्ञान की निवृत्ति नहीं हो सकती। जब तक मन रूपी कुत्ता विषय जन्य आनन्द की बून्दों को चाटने में आसक्त है, तब तक आत्मानन्द रूपी समुद्र का दर्शक नहीं हो सकता। जैसे दबे हुये स्वर्ण निधि को न जानने वाले पुरुष उसके ऊपर २ घूमते हुये भी उसको प्राप्त नहीं कर सकते ऐसे ही आत्म स्वरूप को प्राप्त होते हुये भी महामोह से आवृत्त होने के कारण अपने "प्रत्यक" स्वरूप को नहीं जानते हैं। महामोह के विलास से उत्पन्न विषय रूप मेघ से छिपा हुआ आत्म रूप चन्द्रमा अत्यन्त समीप होता हुआ भी पूर्नीत नहीं होता। जैसे तीन लोक के राज्य को प्राप्त होता हुआ मनुष्य भिक्षा की आकांक्षा नहीं करता ऐसे ही परमानन्द को प्राप्त हुआ पुरुष निकृष्ट विषय सुख की इच्छा नहीं करता। हे चित्तवृत्ते ! जब तू विषय जन्य सुखों के संग को छोड़ कर प्रत्यगात्मा में आरूढ़ होगी, तभी उस आनन्द को पा सकेगी। अतः जब तू चित्त शुद्धि द्वारा प्रत्यगात्मा में तत्पर हो जायगी तभी उस आनन्द को पा सकेगी। तू मेरी बड़ी बहिन है, तथा सन्मार्ग में प्रवृत्त हुई है। इसलिये मैं आत्मानन्दता के विषय में कहता हूं। महर्षि भृगु ने तप करके अन्वय और व्यतिरेक पूर्वक निश्चय किया था कि आनन्द ही ब्रह्म का स्वरूप है। बृहदारण्यक की 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' यह श्रुति

आत्मा की परमानन्दता में प्रमाण है। तथा तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्द वल्ली के आठवें अनुवाक में "सैषानन्दस्य मीमांसा" अब आनन्द की मीमांसा की जाती है इत्यादि आरम्भ करके मानुष आनन्द से लेकर ब्रह्मा के आनन्द तक जितने आनंद पूर्व पूर्व की अपेक्षा से उत्तरोत्तर सौ सौ गुणा कथन किये गये हैं वे सब आनन्द तत्व ज्ञानी को होते हैं। और यह आत्मा ही आनन्दमय है इस प्रकार परमानन्द रूपता का निरूपण किया गया है। इसी वल्ली के चतुर्थानुवाक में लिखा है:-

यतो वाचो निवर्तन्त अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन॥

जहां वाणी और मन दोनों न पहुंच कर लौट आते हैं उस आनन्द स्वरूप ब्रह्म को जो मनुष्य जान लेता है उसे किसी से भय नहीं होता। "एषाऽस्य परमानन्दः" तथा, 'को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति' इत्यादि ब्रह्मवल्ली के सातवें अनुवाक में भी आत्मा की आनन्द रूपता का निरूपण किया गया है। "एषाऽस्य परम आनन्दः एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति" यह इसका परम आनन्द है, इसी आनन्द की मात्रा को पाकर अन्यान्य भूत जीवन पाते हैं। अर्थात् प्राणियों को जितने भी सुख होते हैं वे सब इस आनन्द के ही अंश हैं। अन्यान्य श्रुतियां भी ब्रह्मानन्द के विषय में प्रमाण हैं। यह सब श्रुतियां ब्रह्मात्मैक्य रूप एक ही अर्थ को एक स्वर से प्रतिपादन करती हैं। अतः उनकी प्रमाणता में कोई सन्देह नहीं है भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा रूप तीन प्रकार की अप्रमाणता से रहित वेदान्त वाक्य स्वतः प्रामाण्य रूप सामर्थ्य वाले होने से आत्मा की आनन्दता में प्रमाण हैं।

सब प्राणियों को आत्मा ही प्यारा है। श्रुति में कहा है "आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियंभवति" आत्मा के ही लिये सब जगत् प्यारा है, पुत्र के हित के कारण पुत्र प्यारा नहीं है, किन्तु आत्मा के लिये पुत्र प्यारा है। इसी प्रकार मित्र, दारा, भाई आदि सब आत्मा ही के लिये प्रिय हैं। आत्मा ही प्रधान रूप से प्रिय है पुत्रादि में गौण प्रीति है, उनमें केवल ममत्व का आरोप करके यह जीव प्रेम को मान रहा है। इसलिये विचारना चाहिये कि आत्मा की प्रियता क्या वस्तु है? जो सुख की उत्पत्ति का कारण है वही प्रिय है यदि ऐसा मानें तो इन्द्रिय विषय आदि में इस लक्षण का व्यभिचार होगा, क्योंकि इन्द्रिय आदि भी सुख की उत्पत्ति के कारण हैं, यदि कहो कि इन्द्रिय आदि भी प्रिय रहें इसमें हमारी क्या हानि है? यह भी उचित नहीं, क्योंकि श्रुति कहती है "एक आत्मा ही प्रिय है"। मेरी यह अभिलषित वस्तु मुझे प्राप्त हो, इस प्रकार जिस वस्तु की दूसरे के लिये अभिलाषा नहीं की जाती, पण्डित लोग उसी वस्तु को प्रिय मानते हैं इन्द्रियादि पदार्थों की अभिलाषा अपने आत्मा के ही लिये है अतः परार्थ होने से इन्द्रिय आदि प्रिय नहीं हैं किन्तु आत्मा ही प्रिय है। यदि कोई कहे कि स्त्री आदि से सुख होता है वही हमको प्रिय रूप से इष्ट है, तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि विषय जन्य सुख भी अपने लिये वांछित होने के कारण परार्थ है। इसलिये पण्डित लोग इसे भी प्रिय नहीं मानते। यदि ऐसा मानो कि अमुक वस्तु मुझे सदा प्राप्त होती रहे, क्योंकि वह मुझे अनुकूल है। ऐसी अनुकूलता बुद्धि जिसमें हो वही वस्तु प्रिय है, तो यह भी युक्त नहीं क्योंकि यह वस्तु भी आत्मा के लिये अनुकूल होने से अप्रधान हो गई, अतः वह भी प्रिय नहीं रही। जो लोग ऐसा

कहते हैं कि "जो वस्तु किसी दूसरे के लिये नहीं हो और उसमें अनुकूलता बुद्धि हो वही सुख तथा, वही प्रिय है, तब तो ऐसा सुख ऐसी प्रियता हम को भी अंगीकार है क्योंकि ऐसी प्रियता केवल आत्मा में ही है। आत्मा से भिन्न ब्रह्म लोक पर्यन्त अन्य किसी पदार्थ में वह प्रियता नहीं है, क्योंकि वे सब पदार्थ आत्मा के लिये ही होने के कारण अप्रधान हैं। यदि सुख के आश्रय को ही प्रिय कहो तो भी युक्त नहीं है क्योंकि यदि सुख के उपादान कारण को ही प्रिय माने तो ऐसा मानना ठीक नहीं अतः आत्मा का सुख का उपादान कारण मानने से आत्मा परिणामी हो जायगा, जैसे मिट्टी घट का, या तन्तु पट का उपादान कारण होने से परिणामी हैं और परिणामी होने से आत्मा अनित्य ही होगा, ऐसी दशा में स्वर्गादि सुख को कौन भोगेगा? जैसे भोजन का आधार पात्र है ऐसे ही आत्मा सुख का आधार है यह भी ठीक नहीं क्योंकि यदि आत्मा सुख का प्रकाशक होगा तो उस सुख को आत्मा से भिन्न और उसकी अपेक्षा अप्रधान मानना पड़ेगा अतः उसमें पूर्वोक्त प्रियता रूप प्रधानता नहीं रहेगी, प्रत्यगात्मा ही ज्ञान तथा सुख रूप है और वही प्रिय है तो इस पक्ष में किसी प्रकार का भी दोष नहीं आता। अतः आत्मा ही सच्चिदानन्द रूप है। हे चित्तवृत्ते! मैंने संक्षेप से आत्मा ही आनन्द रूप है इस विषय का निरूपण किया। इसलिये तू आत्म सुख से प्रसन्न हो कर विषयों से उत्पन्न होने वाले सुखों का परित्याग करदे।

अपूर्ण

ईश्वरभक्ति से महान् लाभ

(ले० श्री विद्यालङ्कार पं० रामकुमार जी जोशी)

नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुःख शमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

प्राणीमात्र संसार के कष्टों से पीड़ित होकर सुख की अभिलाषा करते हैं और चाहते हैं कि हमको दुःख का स्वप्न भी न हो। बात भी ठीक है, क्योंकि दुःख का नाश होना ही सुख है। सच्चे सुख को प्राप्त करना मनुष्य का परम पुरुषार्थ है महर्षि कपिल कहते हैं। "अत्यन्त दुःख निवृत्या कृत्य कृत्यता' अर्थात् मनुष्य अपने को कृत्य कृत्य तभी समझे जब अपने पुरुषार्थ द्वारा त्रिविध तापों से अत्यन्त निवृत्ति पा चुके। संसार में सुख की इच्छा सब को रहते हुए भी अधिकतर दुखी पाये जाते हैं, इसका कारण है संसार के नश्वर पदार्थों में सुख समझ कर चञ्चल मन का भोग विलासों के प्रलोभनों में फंस जाना। जब मन विषयों में फंस जाता है तब फसकर कष्ट पाने लगता है और वहां से निकलने का उपाय न देख कर छट-पटाता है, पश्चाताप करता है, अपने भीतर बल न देखकर उस कष्ट से सदा के लिये उद्धार पाने को ईश्वर से प्रार्थना करता है, पर चञ्चल होने से या कुछ भी सुख मिलजाने से वह फिर उस दयालु ईश्वर को भूल जाता है। इसप्रकार दुखों से छुट-कारा नहीं हो सकता। संसार के जन्म मरण रूप चक्र से मुक्त होने के लिये बिना प्रभु की शरण के दूसरा उपाय नहीं है। ईश्वर शरणागति से ही संपूर्ण दुःख नाश होकर अविनाशी सुख की प्राप्ति होती है। श्रीकृष्ण भगवान् गीता में कहते हैं।

"तमेव शरणं गच्छ सर्वं भावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्"

अर्थात् हे अर्जुन! सब प्रकार से तुम उसी ईश्वर की शरण में जाओ उसी के अनुग्रह से तुमको परम शान्ति प्राप्त होगी और अविनाशी पद को प्राप्त होगे। उस प्रभु की शरण लेना ही ईश्वर भक्ति है। जिस पर ईश्वर की विशेष कृपा होती है उसी को सिद्धि प्राप्त होती है, जैसे गीता में कहा है।

"यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः"॥

अर्थात् जिस अन्तर्यामी परमात्मा से संपूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति होती है। जिस कारण रूप परमेश्वर से संसार व्याप्त है उस ईश्वर को जो कोई अपने कर्मों से पूजता है वही सिद्धि पाता है। इसलिये हम सबको उस परम पिता परमात्मा की भक्ति करनी चाहिये। दिनरात चौबीसों घंटे प्रत्येक कार्य करते हुए उसका स्मरण रखना मनुष्य का परम कर्तव्य है। अपने सभी व्यवहार उसी के हेतु करके अपने सब कर्म उसको समर्पित करने चाहियें। इसके अतिरिक्त प्रातःकाल और सायंकाल विशेष रूप से ईश्वर उपासना करने से चित्त प्रसन्न रहता है तथा आयु, आरोग्य और आनन्द लाभ होता है और सर्व व्यापकता का अनुभव करके मनुष्य बुरे कर्मों से बचा रहता है। देखिए उपनिषद् में कहा है

"स्वप्नान्तं जागृतान्तं चोभौ येनानुपश्यति।
महान्त विभुमात्मान मत्वा धीरो न शोचति"॥

अर्थात् प्रातः काल सोने के अन्त में और सायंकाल जागृत अवस्था के अन्त में जो धीर पुरुष उस महान् सर्व व्यापक ईश्वर की उपासना करता है उसको किसी प्रकार का शोक नहीं होता। ईश्वर भक्ति से ही तत्वज्ञान प्राप्त होता है। भगवान् ऋषभदेव के पुत्र योगी पिप्पलायन ब्रह्मवेत्ता विदेह राजा जनक से कहते हैं।

"यर्ह्यब्ज नाम चरणैषणयोरुभक्त्या,
चेतो मलानि विधमेद्गुण कर्मजानि॥
तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्वं,
साक्षाद्यथाऽमल दृशोः सवितृ प्रकाशः"

अर्थात् जब मनुष्य बाह्य प्रपंचासक्ति त्याग कर सच्चिदानन्द परमेश्वर के चरणों में चित्त को लगाता है तब भक्ति उत्पन्न होती है, और उस भक्ति से चित्त के गुण कर्म से उत्पन्न सब पाप दोष दूर होजाते हैं तब चित शुद्ध होकर आत्मतत्व को प्राप्त करता है। जैसे निर्मल दृष्टि से सूर्य मण्डल का प्रकाश दिखता है इसी प्रकार भक्ति चित शुद्ध होने पर ईश्वर का साक्षात्कार होता है। ईश्वर भक्ति से युक्त निर्धन मनुष्य भी इन्द्र से बढ़कर शोभा पाता है। गुसाईं तुलसी दास जी कहते हैं।

'तीन टूक कौपीन की औ भाजी बिन लौन।
तुलसी रघुबर उर बसे तो इन्द्र बापरो कौन"

और देखिए पद्म पुराण का कथन है।

सकल भुवन मध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या,
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्ति रेका।
हरिरपि निजलोक सर्वथातो विहाय,
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः॥"

अर्थात् संपूर्ण भुवनों के बीच में वे पुरुष निर्धन भी धन्य हैं जिनके हृदय में श्री हरि की जगत्पावनी एकाग्रभक्ति वास करती है, हरि भी भक्तिवश उन भक्तों की इच्छानुकूल रूप धारण कर अपनी निज शेष शय्या छोड़कर भक्तों के हृदय मन्दिर में प्रकट हो जाते हैं।

वस्तुतः मनुष्य जीवन में भगवत् प्राप्ति से बढ़कर संसार में कोई महान् लाभ नहीं। इस महान लाभ की प्राप्ति ईश्वर भक्ति से ही हो सकती है। अब श्री श्यामसुन्दर भक्तवत्सल करुणानिधि से

यह प्रार्थना है:-

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥

शरणागति

(गतांक से आगे)

(ले० श्री शर्मा जी भारद्वाज 'साहित्य रत्न')

'मोक्ष प्राप्ति के लिये 'शरणागति' ही सर्वोत्तम साधन है' इस बात का विवेचन गतांक में भली प्रकार किया जा चुका है। अब मैं पाठकों के सामने यह विचार रखने की कोशिश करूंगा कि और साधनों की अपेक्षा इसमें क्या विशेषता है।

पहिले तो इस शरणागति-मार्ग में चलने का सब को अधिकार है, यही इसकी सब से बड़ी विशेषता है। वेदादि में जो मोक्ष के लिये साधन बताये गये हैं, उनमें केवल तीन वर्णों को अर्थात् ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को ही अधिकार है। बेचारे शूद्रों की कोई बात ही नहीं पूछता मानों ईश्वर का उनसे कोई सम्बन्ध ही नहीं। एक शरणागति-मार्ग ही ऐसा है जिस पर सब का अधिकार है। समदर्शिता, इसी की सत्ता पर जगमगा रही है। यह मार्ग इतना संकीर्ण नहीं कि जिसमें चारों वर्ण एक साथ न चल सकते हों! इस मार्ग में किसी अधिकारानधिकार आदि का कुछ नियम नहीं। कहा भी है:-

'प्राप्तु मिच्छन् परां सिद्धिं जनः सर्वोऽप्यकिञ्चन।
श्रद्धया परया युक्तो हरिः शरण माश्रयेत ॥

आशय यह है कि यदि मनुष्य परा सिद्धि (मोक्ष) की इच्छा करे तो सब कोई अकिञ्चन हो कर श्रद्धा पूर्वक भगवान् की शरण में जाय।

ब्रह्म. क्षत्र विशः शूद्राः स्त्रियश्चान्तरजास्तथा ।
सर्व एव प्रपद्येरन्. सर्व धातार मच्युतम् ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री और चाण्डाल ये सब भगवान् की शरण आ सकते हैं। क्योंकि वे सर्वधाता अर्थात् सब के उत्पन्न करने वाले हैं।

न जाति भेदं न कुलं नलिंग न गुणं क्रियाः ।
न देश कालौ नावस्थां योगोह्य यमपेक्षते ॥

यह शरणागति-मार्ग न जाति की, न कुल की, न किसी चिन्ह (पहचान) विशेष की, न कुल की, न क्रिया की, न देश की, न काल की और न अवस्था की किसी बात की भी अपेक्षा नहीं करता जो इस मार्ग का पथिक बनना चाहे वह कोई भी क्यों न हो सब को समान अधिकार है।

इन प्रमाणों से शरणागति की सर्वाधिकारता सिद्ध होती है। उदाहरण भी देख लीजिये। क्या वस्त्रापहरण की आपत्ति में द्रौपदी ने 'शरणागति-मार्ग' को नहीं पकड़ा था। यदि नहीं पकड़ती तो करती? क्या उस समय साधनान्तरों से काम चल जाता? नहीं कदापि नहीं। और साधनों में यह शक्ति कहाँ कि जो केवल "हा नाथ म्हारो कांई बिगरैगो लाजैगो विरद तिहारो" कहने ही से हृदय में यथार्थ विप्लव खड़ा करदे। यह शक्ति शरणागति मार्ग में ही है। यद्यपि उसकी (द्रौपदी की) यह करुण-चीत्कार मोक्ष के लिये नहीं थी तथापि फल की विलक्षणता तो प्रतीत होती ही है। और किसी भी बात के लिये सही पर ईश्वर को छोड़ दूसरा उपाय है ही नहीं। इसी प्रकार गजेन्द्र जब ग्राह के द्वारा सताया गया, तब भगवान् की

शरणागति से ही अभिमत फल को प्राप्त हुआ। और भी लीजिये राक्षस राज विभीषण को ही देखिये, वह अपनी जाति के संकोच से सोचता हुआ कि 'हे विधि मिलैं! देव रघुराया' भगवान् रामचन्द्र की शरण जाता है। दूर से आता देख मित्रवर सुग्रीव कुछ और ही मंत्रणा करते हैं परन्तु भगवान् रामचन्द्र 'कोटि विप्र वध लगहिं जाहु, आये शरण तजौं नहिं ताहू' कह कर हृदय से लगालेते हैं। धन्य शरणागति! यह इसी की विशेषता है।

इसी प्रकार स्वरूप की पर्यालोचना में सब को समानाधिकार सिद्ध होता है। क्योंकि इसमें किसी को भी असामर्थ्य नहीं। इस परिगृह्यमाण उपाय से ही सर्वेश्वर भगवान् हैं। और वह सब के लिये समान हैं। और उनका परिग्रहण प्रार्थना मात्र से होता है, उसमें केवल चैतन्यमात्र की अपेक्षा रहती है। और जो अकिञ्चन्य का अनुसाधन कार्पण्य है वह उनके लिये सुगम है तो और गतियों के योग्य नहीं है। इससे इसमें सब का अधिकार सिद्ध है।

किञ्च इस शरणा गति से अभिलषित भिन्न २ प्रकार के फलों का भी पाना सम्भव है। अतः इस उपाय की सर्व फल साधारणता भी औरों से इसमें विशेष है। और उपायों में यह बात नहीं अस्तु समस्त अभिमतों के देने की शक्ति भी इसी शरणा गति में है। यह हुई विशेषता की बात। इस प्रकार शरणागति-पथ-पथिक को और साधनों की जरा भी आवश्यकता नहीं रह जाती। कर्म योगादि अन्यान्य साधनों में जो कृत निष्ठ हैं उनके लिये तो इसकी अपेक्षा है, पर इसको उसकी नहीं। गीता में कहा है:-

'मामेव ये प्रपद्यन्ते माया मेतां तरन्तिते'।

अर्थात् जो मेरी शरण में आ जाते हैं वे इस माया से तर जाते हैं। अन्यथा भगवान् की माया की प्रबलता के कारण सौ बार भी इन्द्रिय निग्रह क्यों न किया जाय पर इस उपाय से उनकी सिद्धि नहीं हो सकती।

उपनिषदों में कहा भी है:-

"इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः॥

प्रथम तो इन्द्रियों को वश में करे। पर अर्थों की सन्निकृष्टता में इन्द्रियाँ वश में नहीं हो सकती। इसलिये सब से पहले अर्थों को वश करें। अच्छा! अर्थों को वश करने से पहले मन से वश में होने को आग्रह करना पड़ेगा। जब तक मन देवता तुम्हारे आग्रह को स्वीकार न करले तब तक अर्थ-वशी करण से कुछ फायदा नहीं। इसलिये सब से पहले मन को वश में करना चाहिये। जब मन को वश में करना आवश्यक है तब अर्थ और मन की प्रधान बुद्धि उपस्थित हुई उसको वश में लाओ। क्योंकि बुद्धि बिना मन का वश होना असम्भव है। इस प्रकार प्रथम बुद्धि को वश में लाना प्रधान हुआ। इस प्रकार उत्तरोत्तर प्रत्येक प्रधान को वश करते २ अन्त में वही परम पुरुष रह जायगा। अर्थात् परम पुरुष सब से प्रधान है। उसको जब तक वश में न किया जायगा तब तक अव्यक्त वश में न होगा। अव्यक्त को वश किये बिना महान् आत्मा वश नहीं हो सकती। महान् आत्मा को जब तक वश में न कर लिया जाय तब तक बुद्धि वश नहीं हो सकती। बुद्धि के बिना मन का वश में होना असम्भव है। मन बिना अर्थ वशमें न होंगे और अर्थ के वश किये बिना इन्द्रियाँ वश नहीं हो सकती। साराश यह है कि इन्द्रिय

निग्रह आदि साधनों में परम पुरुष को वश करना प्रधान है और वह परम पुरुष शरणागति के बिना वश नहीं हो सकते। कहा भी है:–

परम पुरुषस्य वशी करणं प्रपदनेन।

अब सिद्ध हो गया कि सारे साधनान्तर शरणागति के आश्रित हैं। शरणागति को सब की अपेक्षा है। यह भी इसकी एक विशेषता है। इस विषय में कहा है:–

अनेनैव हि कर्माणा योगाः सिध्यन्तियोगिनां।
सिद्धिर्नतद् व्यपेक्ष्यस्य तस्मादेनं परं विदुः॥

इस प्रकार शरणागति के लिये उपायान्तर निरपेक्षता ही नहीं किन्तु 'शण बकल' न्याय से इसके लिये उपायान्तरा सहिष्णुता भी समझनी चाहिये। मन के बन्धन के साथ में जिस प्रकार ब्रह्मास्त्र की महिमा कम होती है उसी प्रकार अन्य उपायों के साथ शरणागति का जोड़ नहीं खाता और वह उसकी महिमा का अपहर्ता (मान-हारक) होता है। जब तक द्रौपदी की, ये मेरे महारथी और लोकों में एक मात्र वीर बैठे हैं, ये मेरे पक्षपाती भीष्म प्रमुख गुरु जन बैठे हुए हैं, इन बातों की ओर दृष्टि रही उसे इनका घमण्ड रहा और जब तक अपनी मान रक्षा के लिये स्वयं प्रयत्न करती रही, इसी प्रकार गजेन्द्र भी जब तक अपने बल का आदर करता रहा तब तक इनका क्लेश निवृत्त नहीं हुआ। अधिकाधिक बढ़ता ही गया। जब कुछ न कर सकने पर सर्व रक्षक, वात्सल्य सिन्धु श्री परम पुरुष की शरण हुए तब क्षण मात्र में शोक-समुद्र से पार हो गये।

इस प्रकार सिद्ध उपाय के परिग्रह में अन्य साधनों का सम्बन्ध अंगत्वेन आपेक्षित रह जाता है। इससे अन्य उपायों के प्रति शरणागति की असहिष्णुता सिद्ध होती है। आशय यह है कि जब तक जीव को और २ उपायों में अवलम्बनता रहती है तब तक शरणागति हो ही नहीं सकती। पहले भी कहा जा चुका है कि यह मार्ग तो अकिञ्चनों का है। इस मार्ग पर चलने वाले को पगडंडियों की बान छोड़ देनी चाहिये। केवल भगवान् को एक मात्र अपना उपाय समझना 'शरणागति' है। 'शरणागति' अपने साथ में और उपायों को अंगीभाव से नहीं देख सकती इसलिये इस शरणागति का आश्रय लेने वाले को और किसी भी बात की चिन्ता नहीं रहती। यह इसमें और विशेषता है।

और जो उपाय हैं वे प्रयाण पर्यन्त कर्तव्य हैं उस पर भी बार २ आवृत्ति रूप से, क्योंकि ध्यान योग का स्वरूप ही तैल धारा की भांति अविच्छिन्न बार २ स्मरण करना है। इस प्रकार के ध्यान योग का प्रति दिन समुचित समय में अनुष्ठान करना चाहिये। और यह जो शरणागति है, वह तो केवल एक बार ही की जाती है। इतने ही में शरणागति स्वरूप सिद्ध हो जाता है। कहा भी है:–

आर्तानामाशु फलदा, सकृदेव कृताह्यसौ।
दृप्तानामपि जन्तूनां देहान्तर निवारिणी॥

भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की प्रतिज्ञा है कि:–

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

यह और विशेषता हुई। और साधनों में तो अन्तिम स्मरण की अपेक्षा है, जैसा गीता में कहा है:–

अन्त काले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

शरणागति पथ-पथिक को इसकी आवश्यकता नहीं। वह तो पहिले ही अपना सब भार भगवान् पर रख चुका। इसको किसी और के स्मरण की आवश्यकता नहीं, उलटा भगवान् ही इसका स्मरण करते हैं। भगवान् ने स्वयं कहा है:-

'अहं स्मरामि मम भक्तं नयामि परमां गतिम्'।

यह और एक विशेषता हुई।

प्रारब्ध कर्म का भी इससे नाश हो जाता है जैसा कि कहा है:-

साप्य भक्तिस्तु सा हन्त्री प्रारब्धस्यापि भूयसी।"

आशय यह है कि भक्ति द्वारा प्रारब्ध कर्मों का भी नाश हो जाता है।

शरणागति पथ-पथिक दो प्रकार के माने जाते हैं:-

१-आर्त

२-दृप्त

आर्त शरणागति के अनुष्ठान के पश्चात् ही क्षण भर में मोक्ष हो जाता है और दृप्त शरीर को नाश कराने वाले प्रारब्ध के नाश से उस शरीर के अवसान में मोक्ष हो जाता है। यह भी इसकी एक विशेषता हुई:-

कहां तक लिखें शरणागति मार्ग की विशेषता कौन वर्णन कर सकता है। यह एक निराला मार्ग है। धन्य है यह और इसके पथिक !

श्रीभगवच्चर्चा

प्रथम-खण्ड।

प्रथम चर्चा।

मङ्गलाचरणम्।

शुद्धं बुद्धं ध्रुवं सर्वं भासयन्तं चराचरम्।
सकारंच निराकारंकोटि ब्रह्माण्ड विग्रहम्॥
सर्वाधारं निराधारं गुणाधारञ्च निर्गुणम्।
सर्वालम्बनं नित्यं सत्स्वरूपं नमाम्यहम्॥

जय जय वासुदेव सुख राशी।
निज एक अच्युत अविनाशी॥ १॥
शुद्ध बुद्ध कूटस्थ निरंजन।
स्वयं ज्योति निष्कल मनरंजन॥ २॥
सन्मय शान्त अखंड अनामय।
निर्गुण गुणाधीश करुणामय॥ ३॥
हृषीकेश मन बुद्धि प्रकाशक।
जगन्नाथ रवि शशि अवभासक॥ ४॥
नाम रूप जग जग से न्यारा।
नाम रूप जग किया पसारा॥ ५॥
निराकार अव्यय अविकारी।
भक्तन हित लीला तनुधारी॥ ६॥
ब्रह्मा बन कर जग उपजावत।
विष्णु रूप धरि धर्म सिखावत॥ ७॥
रुद्र मूर्ति हो जग संहर्ता।
सब कुछ करता महा अकर्ता॥ ८॥
दो०-चलता किंचित है नहीं, सबसे आगे जाय।
ऐसे अद्भुत देव का, भक्त, मर्म को पाय॥ १॥

भगवत सबके आत्मा प्यारे।
सब उजियारों के उजियारे ॥ १ ॥
स्वामी सबके पोषक रक्षक।
भक्तपाल कामादिक भक्षक ॥ २ ॥
शिव शाश्वत पावन से पावन।
पावन कर्ता पाप नशावन ॥ ३ ॥
छोटा बड़ा एक सम जाने।
पत्र पुष्प जल से तुष्ट माने ॥ ४ ॥
कमल उठा गज अर्पण कीन्हा।
पकड़ ग्राह से निज पद दीन्हा ॥ ५ ॥
बन्दर बनचर सखा बनाये।
सभी भान्ति से प्रभु अपनाये ॥ ६ ॥
बकी पूतना गरल पिलाया।
ताहू हरिनिज धाम पठाया ॥ ७ ॥
भगवन्नाम लेत हों मंगल।
पाप क्षीण हों दूर अमंगल ॥ ८ ॥

दो—अस करुणा कर छोड़ के, भजे द्रव्य सुत दार।
स्वार्थ न जाने मूढ़ सो, विषयी निपट गंवार ॥ २ ॥

ब्रह्मा जब चिन्तातुर पाये।
भगवन् रूप वराह बनाये ॥ १ ॥
जाय रसातल पृथिवी लाये।
ब्रह्मा मनु आदिक सुख पाये ॥ २
हिरण्याक्ष जब रोकन आया।
ताहि मारि निज धाम पठाया ॥ ३ ॥
हिरण्यकशिपु नृहरि बन पाला।
परम भक्त प्रह्लादहि पाला ॥ ४ ॥
राम रूप धरि रावण मारा।
वसुंधरा का भार उतारा ॥ ५ ॥
कृष्ण होय लीला बहु कीन्हे।
निज भक्तन अपूर्व सुख दीन्हे ॥ ६ ॥

मत्स्य आदि ले के अवतारा।
भगवत् निर्मल यश विस्तारा ॥ ७ ॥
पढ़त सुनत पातक सब नाशें।
भगवन् तुरत हृदय में भासें ॥ ८ ॥

दो—नरतनु का फल है यही, हरि में चित्त लगाय।
मृत्यु शीश पर पैर धरि, विष्णु परम पद पाय ॥ ३ ॥

शिव ब्रह्मादिक तरहि न जाने।
जब तक भिन्न आप कूं माने ॥ १ ॥
मन वाणी जहं पहुंच न पाते।
जाने बिना लौट हैं आते ॥ २ ॥
नेति नेति कर श्रुति थक जाती।
चुप होकर है ताहि लखाती ॥ ३ ॥
सोही देव रूप बहु धरता।
अनुपम पावन लीला करता ॥ ४ ॥
शोभन चरित्र भक्त जो पढ़ते।
अनायास भव सागर तरते ॥ ५ ॥
अघनाशक हरिचरित सुहाने।
करें न रति वे परम अयाने ॥ ६ ॥
भगवच्चरित जिन्हें ना भाते।
पामर पुनि २ हैं पछताते ॥ ७ ॥
भगवच्चर्चा चित्त लगाते।
गो पद सम भव से तर जाते ॥ ८ ॥

दो—सुनत सुनावत हरि चरित, चार पदारथ पांय।
जन्म मृत्यु भय आदि सें, श्रम बिनु ही छुट जांय ॥ ४ ॥

पड़े न भूखा प्यासा रहना।
शीत उष्ण भी नाहीं सहना ॥ १ ॥
आसन भी ना पड़े लगाना।
प्राण निरोध न मन ठहराना ॥ २ ॥
प्रत्याहार पड़े ना करना।
ध्यान आदि भी नाहीं धरना ॥ ३ ॥

नहीं किसी को सेवा करनी।
छुटे नहीं सुत दारा धरणी ॥ ४ ॥
यज्ञ दान तप नहीं करना।
नहीं चढना नहीं उतरना ॥ ५ ॥
पैसा खर्च न होय ना पाई।
नहीं अधिक चहिये चतुराई ॥ ६ ॥
हर्र फिटकरी कछू न जावे।
चुनरी पे रंग चोखा आवे ॥ ७ ॥
पाठ करत मन मोद बढावे।
भगवत्चर्चा कहि न भावे ॥ ८ ॥

दो–जन्म २ के पाप सब, क्षण में देवे खोय।
भगवत्चर्चा सुलभ अति लाभ अपरमित होय ॥ ५ ॥

दान तीर्थ उपवास नियम यम।
प्राणायाम तितिक्षा संयम ॥ २ ॥
नाना साधन वेद बताये।
सिद्ध होंय सब हि गुण गाये ॥ २ ॥
धर्म कर्म आचार शुभेच्छा।
ज्ञान ध्यान समता मोक्षेच्छा ॥ ३ ॥
दम दम आदि सभी गुण आवें।
भगवत्चर्चा मन दे गावें ॥ ४ ॥
जहं भगवत् के गाये गुण गण।
बढे मोद मन होय पुलक तन ॥ ५ ॥
प्रेम अश्रु भीतर से आवें।
जन्म २ के मल धुल जावें ॥ ६ ॥
मैला मन निर्मल हो जाई।
शक्ति मन आवे कृष्ण कन्हाई ॥ ७ ॥
आये जहां कृष्ण मन मांहीं।
भोग मोक्ष कुछ दुर्लभ नांहीं ॥ ८ ॥

दो–भगवत्चर्चा मांहि है, श्रुति पुराण का सार।
हरि भक्तों की शुभ कथा, भगवत् के अवतार ॥ ६ ॥

वाणी सफली है वही, हरिगुण करे जो गान है।
शोभन वही है हाथ जो हरि हेतु देता दान है ॥
सार्थक वही है पैर जो हरि मन्दिरों में जाय है।
शुचि शान्ति सन्तों संमिलन में मोद जिसको आय है ॥१॥
है श्रोत्र सोही धन्य जो वंशी सुने नंदलाल की।
सोही त्वचा कृत कृत्य है, छूवे त्वचा गोपाल की ॥
है आंख सोई सुफली, झांकी करे घनश्याम की।
रसना वही है रसभरी, चक्खे रसायन राम की ॥२॥
है नाक वाली नाक सूंघे गंध जो वन माल की।
मन सुमन लीला जानता सब जो यशोदा लाल की ॥
है बुद्धि सोई शुद्ध जो है हो चुकी श्री श्याम की।
सो चित्त ही है शान्त जो भूले ना सुचि सुखधाम की ॥३॥
दो–भोला ! ऐसा समझ कर, सुना कृष्ण गुण गाय।
हों प्रसन्न सब भक्तजन, शान्ति आप भी पाय ॥ ७ ॥

इति प्रथम चर्चा

भक्ति का महत्व

[ले० श्री गोपालप्रसाद जी शर्मा]

लोग कहते हैं कि श्री गीता में त्रिकांड हैं कर्म्म, ज्ञान और उपासना। पर जब हम नवमें अध्यायका अन्तिम श्लोक "मन्मनाभव मद्भक्तो" और अन्तिम अठारहवें अध्यायका प्रसंग वश अन्तिम श्लोक "मन्मना भव मद्भक्तो" एक ही आशयका पाते हैं तो कहना पड़ता है कि श्री गीता में त्रिकांड में नहीं किन्तु दो भागों में विभक्त है एक पूर्वार्ध दूसरा उत्तरार्ध। पहले में भक्ति की साधन

अवस्था कही गई है दूसरे में सिद्ध अवस्था। अब रहा कर्म-ज्ञान। सो नवमें अध्यायका-'यत्करोषि यदश्नासि" और अठारहवें अध्याय का-"ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा मद्भक्ति लभते पराम्" केवल भक्ति के और कुछ नहीं है। कर्म्म ज्ञान भक्ति के अंग ही हैं।

भक्ति गुणातीत है। कर्म्म ज्ञान गुणमय है जहां भगवान् ने सत्रहवें, अठारहवें में गुण का वर्णन किया है, कर्म ज्ञान सब की त्रिगुणमय शृंखला बताई है पर कहीं भी भक्ति गुणमय नहीं कही गई है।

फिर भक्ति में ऐसी कई जिम्मेदारियाँ भगवान् ने भक्त के लिये ली हैं कि जो और मार्ग वालों के लिये नहीं ली है। अर्थात् १ "योगक्षेमं वहाम्यहम्" २ 'बुद्धियोग ददाम्यहम ३-"न मे भक्तः प्रणश्यति।" आदि।

भक्ति की महत्वता के विषय में स्वयं भगवान् कहते हैं कि-'स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपियान्ति परमां गतिम्। किं पुनर्ब्राह्मण पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा॥

भगवान् का तात्पर्य्य यह है कि अधम से नि भी जब मेरी भक्ति कर परम गति प्राप्त करते हैं तो ब्राह्मण भक्ति करें तो उनका क्या कहना है? पर इन वचनों को कर्म्माभिमानी क्यों सुनने लगे।

एक कर्मकांडी महात्माने यही उपरोक्त लिखा वचन पढ़ा कि भक्त के लिये-"योग क्षेमं वहाम्यहम" वहाम्यहम् का मोटी तौर से अर्थ होता है ढोता हूं। कर्म कांडी के हृदय में यह शब्द खटका सोचा भक्त के लिये योग क्षेम ढोता हूं यह ठीक नहीं है। इसलिये गीता में "ददाम्यहम" अर्थात् देता हूं लिख दिया। और स्नान को चले गये। पण्डित जी इस विचार में रात भर जागे थे घाट पर जाकर वृक्ष की छाया में सो गये। भोजन का सामान नित्य आता था, स्त्री घर राह देख रही थी। श्री भगवान् मजदूर का रूप धर कर सिर पर गठड़ी धरे आये स्त्री से कहा माजी आपके पति ने सामान भेजा और मेरे छुरी मारी देखो यह रक्त निकल रहा है और अन्तर्ध्यान हो गये।

पण्डित की नींद खुली, नहा कर घर आये। स्त्री ने कहा बेचारा मजदूर सिर पर गठड़ी धर सामान लाया आपने छुरी क्यों मारी। अब कर्मकांडी भक्त को होश आया। ये भगवान् थे योंही भक्तों के लिये योग क्षेम ढोते हैं मैंने काट कर ददाम्यहम् किया वही छुरी मारी है।

जो श्री गीता के वचनों को देख कर भी भक्ति की महत्वता नहीं मानते वे भूलते हैं। भगवान् की माया ने संसार को नचाया है भक्ति ने भगवान् को नचाया है। "भक्ति वस भगवान्" यह सब जानते हैं।

भगवान् ने दुर्योधन के व्यंजन छोड़ विदुर का साग खाया किस लिये? चतुर्वेदी का छाड़ उनको स्त्रियों को अपनाया किस लिये? ऋषि आश्रम छोड़ भीलनी के घर पधारे किस लिये? धर्मराज के राजसूय यज्ञ में वाल्मीक श्वपच की प्रतिष्ठा बढ़ाई किस लिये? ज्ञानी उद्धव को वृज भेज श्रुति रूपा गोपियों का समागम करा उद्धव से ही यह कहवाया कि वृज की लता गुल्म बनाइये जिससे गोपियों की चरण उड़ कर हम पर गिरे यह किस लिये। यह सब था भक्ति की महत्वता के लिये?

योग-साधन

[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

८०१. धारणा चित्त की एकाग्रता को कहते हैं। चित्त को किसी एक वस्तु विशेष पर एकाग्र करना चाहिए। एकाग्रता चाहे शरीर के बाह्य अंग पर हो अथवा आन्तरिक पर। चित्त को उस स्थान पर कुछ समय तक स्थिर रखना चाहिए इसीका नाम धारणा है। इसका नित्य अभ्यास करना चाहिए।

८०२. प्रथम चित्त को यम नियम द्वारा शुद्ध करना चाहिए फिर धारणा का अभ्यास करना चाहिए। पवित्रता के बिना धारणा किसी प्रयोजन की नहीं। कुछ अध्यात्म वादी ऐसे हैं जो चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करते हैं परन्तु उनका आचार श्रेष्ठ नहीं होता यही कारण है कि वह अध्यात्म मार्ग में विशेष उन्नति नहीं कर पाते। जिसका आसन स्थिर है और जिसने अपनी नाड़ियों को शुद्ध कर लिया है और प्राणायाम द्वारा प्राणमय कोष को भी शुद्ध कर लिया है वही चित्त की एकाग्रता करने में समर्थ हो सकता है।

८०३. कुछ अबोध साधक शीघ्र सफलता प्राप्त करने के खयाल से यम नियमों के साधन बिना ही चित्त की एकाग्रता का साधन करते हैं। यह बड़ी भारी गलती है। यम नियम का साधन परमावश्यक बात है।

८०४. एकाग्रता चित्त की स्थिरता का नाम है। यदि चित्त के विक्षेप के कारणों को दूर कर दोगे तो एकाग्रता आप ही हो जावेगी। एक सच्चा ब्रह्मचारी जिसने अपने ब्रह्मचर्य्य की रक्षा की है आश्चर्य जनक संयम कर सकता है। तुम अपना ध्यान अन्तर में सात चक्रों में लगा सकते हो। वह चक्र मूलाधार, मणिपूर अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रसार। नाक के अग्र भाग पर अथवा जिह्वा के अग्र भाग पर या किसी देवी देवता की मूर्ति पर।

८०५. समय में ध्यान बहुत अधिक सहायक होता है। जिसकी ध्यान शक्ति बढ़ी हुई है वह अधिक समय कर सकता है। जिसका चित्त वासना वाला है या जिसके मन में अनेक प्रकार के भ्रम के विचार बसे हुए हैं वह एक क्षण के लिए भी अपने चित्त को एकाग्र नहीं कर सकता। उसका चित्त बन्दर की भान्ति नाचता रहता है।

८०६. जिसने अपने चित्त को अनेक प्रकार के विषयों से निवृत्त करके प्रत्याहार का साधन कर लिया है वही एकाग्रता में शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकता है। तुम अध्यात्मिक पथ पर शनैः २ और क्रमबद्ध चल सकते हो। प्रथम यम, नियम, आसन, प्राणायाम, और प्रत्याहार में दृढ़ता प्राप्त करनी होगी उसके प्रश्चात् धारणा और ध्यान आप ही सहज में सिद्ध हो जावेंगे।

८०७. जिस वस्तु पर तुम ध्यान लगाते हो उसको अपने दिमाग में इतना स्थिर कर लेना चाहिए कि उसके उपस्थित न होने पर भी तुम अपने चित्त में उसका ध्यान करते ही शीघ्र अपनी आखों के सामने देखने लगो। यदि तुम एकाग्रता का अधिक अभ्यास करने में सफल हो जाओगे

तो यह बड़ी आसानी से हो सकेगा।

८०८. घड़ी की टिक २ आवाज पर, दीए की लौ पर और दीवार पर काला चिन्ह लगा कर अर्थात् किसी सुन्दर गुलाब के फूल पर या अन्य किसी भी सुन्दर वस्तु पर चित्त का संमय किया जा सकता है। यह स्थूल धारणा कहलाती है।

८०९. अपने पिता, मित्र या किसी महापुरुष के गुणों पर भी संमय किया जा सकता है। इसको सूक्ष्म धारणा कहते हैं। जिसके गुणों पर संमय किया जाता है वही गुण साधक के चित्त में प्रविष्ट हो कर उसका स्वभाव बन जाते हैं।

८१०. आसन बहिरंग साधन है और धारणा अन्तरंग साधन है। ध्यान और समाधि की अपेक्षा धारणा भी बहिरंग साधन है। यदि तुम्हारी यह इच्छा है कि तुम्हारे चित्त की एकाग्रता बढ़े तो संसारी व्यवहार को कम करना चाहिए। साथ ही मौन का भी अभ्यास करना चाहिए।

८११. प्राणायाम का नियम पूर्वक अभ्यास करके प्राण पर आधिपत्य करना चाहिए। इन्द्रियों का निग्रह करके चित्त को किसी सुन्दर पदार्थ पर लगाना चाहिए। पवित्रता और शुद्धता के विचारों का संग्रह करना चाहिए।

८१२. जब तक किसी पदार्थ का आश्रय नहीं लिया जाता तब तक चित्त स्थिर नहीं होता। हृदय को प्रफुल्लित करने वाले पदार्थ जैसे चमेली का फूल, आम या सन्तरे का फल या प्रिय मित्र के ध्यान पर चित्त एकाग्र हो सकता है। आरम्भ में चित्त को किसी ऐसे पदार्थ पर स्थिर करना जिसको चित्त पसन्द न करता हो बड़ा कठिन है। हम किसी शत्रु या साँप या कुरूप मनुष्य के मुख पर अपना ध्यान नहीं जमा सकते।

८१३. जब तक चित्त इच्छित पदार्थ पर पूर्णतया न टिक जावे तब तक अभ्यास करते रहो। जब चित्त इधर उधर दौड़ने का प्रयत्न करे तो कोशिश करके उसे फिर अपने इच्छित स्थान पर लाओ। भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं:-

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

यह चंचल और अस्थिर मन जहां जहां जाता है जिज्ञासु को चाहिए वहां वहां से उसे हटा कर अपने वश में करे।

८१४ धारणा पतञ्जलि महर्षि के राज योग अर्थात् अष्टांग योग की छटी सीढ़ी है। धारणा के परिपक्व होने पर मन रूपी झील में केवल एक वृत्ति रह जाती है। चित्त के अन्य समस्त कर्म्मों का लय हो जाता है। जो मनुष्य आध घण्टे तक ध्यान कर सकता है वह बड़ा शक्ति सम्पन्न हो जाता है। उसकी इच्छा शक्ति बहुत बलवान हो जाती है। ध्यान लगाने के लिए भ्रकुटी उत्तम स्थान है। अनहद शब्द में ध्यान लगाना भी उत्तम है जो कि दाएं कान से सुनाई देता है।

८१५. सुन्दर ओ३म् लिख कर उस पर ध्यान लगाया जा सकता है अथवा भगवान् कृष्ण की मूर्ति पर जिसके हाथ में वंशी विराजती हो। शंख, चक्र, पद्म और गदा युक्त भगवान् विष्णु का ध्यान किया जा सकता है।

८१६. जब हठ योगी अपने चित्त को षट् आधार अर्थात् छ चक्रों पर करते हैं तब वह अपने मन को गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव आदि देवताओं पर भी स्थिर करते हैं।

८१७. प्राण को प्राणायाम द्वारा वश करो

और इन्द्रियों को प्रत्याहार द्वारा काबू करो और चित्त को सगुण या निर्गुण ब्रह्म पर स्थिर करो।

८१८. हठयोगी कहते हैं कि जो योगी कुम्भक द्वारा अपने प्राण को २० मिनट तक रोक सकता है उसकी धारणा बहुत अच्छी हो जाती है। उसका चित्त स्थिर हो जाता है और विक्षेप दूर हो जाता है, संयम की शक्ति बढ़ जाती है।

८१९. जो अपनी जिह्वा के निचले भाग को काट कर खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हैं वह जिह्वा को खेंच २ कर बढ़ा लेते हैं और उसको तालू के ऊपर के छिद्र में लगा लेते हैं इस अभ्यास से भी धारणा अच्छी पक जाती है।

८२०. जो एकाग्रता का अभ्यास करते हैं उनकी काम करने की शक्ति बहुत बढ़ जाती है। वह प्रत्येक काम को आसानी और चतुराई से कर सकते हैं। जिस काम को दूसरे आदमी ६ घण्टे में करते हैं उस को वह आध घण्टे में बड़ी आसानी से कर सकते हैं। जिस पुस्तक को साधारण आदमी ६ घण्टे में पढ़ता है उसको योगी आध घण्टे में पढ़ सकता है। धारणा से चित्त की तरंगें शुद्ध और शान्त हो जाती हैं, विचार दृढ़ और पवित्र होजाते हैं। धारणा से मनुष्य का सांसारिक हित भी बहुत बढ़ता है। चित्त एकाग्र करने वाला मनुष्य अपने दफ्तर के और व्यापार के काम को बड़ी आसानी से कर लेता है। बुद्धि से भ्रम निकल कर साफ हो जाती है। पहले जो काम कठिन मालूम होते हैं वह पीछे आसान हो जाते हैं। पेचीदा मसले और दिमागी झंझट बहुत आसानी से समझ में आने लगते हैं। और साफ होजाते हैं। जो नित्य अभ्यास करते हैं उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

८२१. भूख से पीड़ित और रोगी दोनों के लिये अभ्यास कठिन है। अभ्यास के लिये स्वस्थ शरीर और आवश्यक सामग्री का होना जरूरी है। अभ्यास के लिए एकान्त कमरे में पद्मासन लगाकर आंखे बन्द करके बैठजाना चाहिए। जब तुम एक सेब का खयाल करते हो तो साथ ही तुमको उसके रंग, रूप और आकार का भी ध्यान आजाता है साथ ही उसके छिलके, गूदे और बीज आदि का भी ध्यान आजाता है। इसके साथ तुम कश्मीर, आस्ट्रेलिया आदि स्थानों का भी ध्यान करने लगते हो जहां से यह फल आता है। तुम यह भी ध्यान करने लगते हो कि इसका स्वाद मीठा या खट्टमिट्ठा है। संग के प्रभाव से इसी प्रकार के अन्य फलों का भी ध्यान आने लगता है। चित्त में ऐसे ही अनेक विचार चक्कर लगाने लगते हैं। तुम विचार करने लगते हो कि अमुक मित्र से आज रेलवे स्टेशन पर ४ बजे मिलना है। बाजार से एक तालिया, चायका डिब्बा और बिसकुट लाने हैं। इन विचार समूहों को हटाकर एक ही प्रकार की विचार धारा बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। विचार धारा में किसी प्रकार का विक्षेप नहीं होना चाहिए। सब प्रकार के विपरीत विचारों को चित्त से दूर करदेना चाहिए केवल एक ही विचार को अपने समक्ष रखना चाहिए। ऐसा अभ्यास करने में तुमको बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। चित्त अपने पुराने पथ को ग्रहण करके पुराने दृश्यों को देखने का भरसक प्रयत्न करेगा और तुम्हारे रोकने पर भी दौड़ लगावेगा। तुम्हारा यह प्रयत्न पहाड़ी पर चढ़ने के समान होगा। परन्तु जब तुमको कुछ सफलता प्राप्त होजायगी तो बहुत आनन्द प्राप्त होगा।

८२२. जो चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करते हैं उनका स्वास्थ्य बहुत उत्तम होजाता है और बुद्धि बहुत शुद्ध हो जाती है।

८२३. जिस प्रकार गुरुत्व आकर्षण का नियम, और संयोग का नियम स्थूल जगत में काम करता रहता है इसी प्रकार विचार के निश्चत नियम जैसे सममाव अपेक्षितभाव और नैरन्तर्य भाव मानसिक अथवा विचार संसार में कर्म करते रहते हैं। जो अभ्यास करते हैं उनको इनका सावधानी से निरीक्षण करना चाहिए। जब चित्त किसी पदार्थ का ध्यान करता है तो उसके गुणों का भी ध्यान करता है। जब कारण का ध्यान करता है तो कार्य का भी करता है।

८२४. यदि तुम ध्यान पूर्वक श्रीमद्भगवद्गीता को या भागवत के एकादश स्कन्ध को पढ़ोगे तो प्रत्येक बार तुम्हारे चित्त में नवीन विचार और अर्थ आवेंगे। अभ्यास द्वारा तुम्हारी बुद्धि तीक्ष्ण हो जावेगी। मानसिकक्षेत्र में सूक्ष्म अर्थों का आप से आप प्रकाश होने लगेगा। तुम दर्शन शास्त्र के गूढ अर्थों को आप से आप समझने के योग्य हो जाओगे।

८२५. जब तुम किसी पदार्थ पर चित्त को एकाग्र करो तो मन से संग्राम न करो। शरीर या मस्तिष्क के किसी भाग पर दबाव मत दो, निरन्तर सहज स्वभाव उस चीज़ का ध्यान करते रहो। केवल मन को स्थिर रक्खो और उसे इधर उधर घूमने न दो।

८२६. वेदान्ती कहता है 'वासनाओं का निग्रह करने के लिए मुझे किसी की परवाह नहीं है। "मैं साक्षी हूं" मैं मन केपरिवर्तनों को देखने वाला द्रष्टा मात्र हूं। भक्त भगवान से प्रार्थना मात्र करके सहायता की आशा रखता है। यदि अभ्यास के समय वृत्तिएं तुमको उद्विग्न करें तो कुछ परवाह मत करो। वह कुछ काल में आप ही निवृत्त हो जावेंगी। यदि तुम उनको दूर करने का प्रयत्न करोगे तो तुम्हारी इच्छा शक्ति पर भार पड़ेगा। उदासीन भाव रखना उत्तम है।

८२७. अपने चित्त को स्थूल और सूक्ष्म, बड़ी और छोटी अनेक प्रकार की वस्तुओं पर एकाग्र करने का अभ्यास करो। कुछ काल में ध्यान करने का उत्तम स्वभाव बन जावेगा। जब तुम ध्यान करने बैठोगे तब ही शीघ्र ध्यान की अवस्था होजावेगी।

८२८. जब तुम किसी पुस्तक का स्वाध्याय करो तो ध्यान पूर्वक करना चाहिए। शीघ्रता में पन्ने उलटने से कुछ लाभ नहीं होता। एक पृष्ठ पढ़कर पुस्तक को बन्द करलो और जो कुछ पढ़ा है उसपर विचार करो। जब गीता का स्वाध्य करो तो उपनिषद् महाभारत और भागवत् से उस विषय का मुकाबला करके देखो कि उनमें क्या अन्तर है।

८२९. दान और राजसूयं यज्ञ ध्यान के मुकाबले में कुछ भी नहीं है वह तो केवल बच्चों का खेल है। आरम्भ में साधक के लिए ध्यान का अभ्यास करना रुकावट उत्पन्न करने वाला और चित्त को दुःखदाई होता है। उसको अपने चित्त और दिमाग़ में नवीन प्रणाली बनानी पड़ती है, दो तीन मास के अभ्यास के पश्चात उसको आनन्द आने लगता है। उसकी यह दशा हो जाती है कि एक दिन भी अभ्यास छूट जाने पर वह विकल होने लगता है। संसारी चिन्ताओं और दुःखों से निवृत्ति पाने का एक मात्र साधन चित्त को एकाग्रता का अभ्यास है। मनुष्य को यह शरीर आत्म साक्षात्कार केलिए मिला है और आत्म साक्षात्कार बिना चित्त के संयम के हो नहीं सकता इसलिए जिनसे बनपड़े उनको योगसाधन करना चहिए। यही एक मात्र मुक्ति का मार्ग है अन्य सब उपाय कहानी मात्र है।

———

मिलन

(रचयिता श्रीमती ब्रजकुमारी 'प्रभाकर' आश्रम)

मुसकान मृदु मुख पै कुरबान,
जहाँ लगि हैं सुख भोगहु नीके ॥ १ ॥
जिन नैननि सैन न मैन हि के सर,
मान किये रस रंगनि फीके ॥ २ ॥
बस चार पदारथ एक हुं बार लुटैं,
लख नन्द लला धन जीके ॥ ३ ॥
सिर धूर परे उर आतम ज्ञान,
मिलें जब हि जीवन "ब्रज" नीके ॥ ४ ॥

एक चेष्टा से कई उपदेश

(ले० भक्तरत्न श्री मथुरा प्रसाद जी)

एक मुसलमान फ़क़ीर से एक मनुष्य ने तीन प्रश्न किये-(१) शरीयत में लिखा है कि शैतान को दोज़ख़ की आग में डालने की सज़ा दी जायगी। और शैतान का तन आतिशी (आग का बना हुआ) कहा जाता है तो आतिशी जिस्म को आग में डालने से क्या तकलीफ होगी। (२) खुदा आंख से दीखता नहीं तो उसका वजूद क्यों माना जाय-(३) कुरान शरीफ में लिखा है और हिन्दू और ईसाई भी मानते हैं कि खुदा के हुकम के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। जो कुछ होता है उसी के हुक्म से होता है तो मनुष्य को बुरे कामों की सज़ा क्यों दी जाती है।

फ़क़ीर साहिब ने एक मिट्टी का ढेला ज़ोर से उस प्रश्न करने वाले की छाती में मार दिया। वोह रोता हुआ काज़ी के पास पहुंचा। काज़ी जी ने फकीर को बुला कर पूछा तो उन्होंने कहा कि इसके तीनों सवाल का जवाब मिट्टी के ढेले से दिया गया है आप गौर कीजिये।

काज़ी क्रोध करके बोला-इस बेचारे ने तीन प्रश्न किये उनका उत्तर चोट लगा कर आपने दिया यह बात समझ में नहीं आई साफ कहो क्या बात है।

फकीर-अच्छा इससे पूछिये इसका शरीर किस चीज़ से बना है?

प्रश्न कर्ता-यह बात तो सब जानते हैं कि मिट्टी वगैरा अनासिर (भूतों) से सारे शरीर बने हैं। मिट्टी का हिस्सा ज्यादा है इसलिये यह खाकी जिस्म मिट्टी का पुतला कहलाता है।

फकीर-अच्छा तुमको कुछ तकलीफ मालूम होती है?

प्र०-जी हां दर्द के मारे मरा जाता हूं।

फ०-यह तकलीफ! तुम्हें कैसे हुई?

प्र०-उसी मिट्टी के ढले से जो आपने मारा है।

फ०-हैं! मिट्टी के पुतले में मिट्टी के ढेले से तकलीफ अगर हम जिस्म से तकलीफ होती है तो आग सदृश आतिशी शरीर वाले शैतान को तकलीफ मुमकीन है या नहीं।

प्र०–हां साहिब अब में समझ गया एक सवाल का जवाब तो मैं ने पालिया दूसरे का कहिये।

फ०–तुम रोते हुए क्यों यहां आये?

प्र–दर्द के सबब से फरियादी आया हूं।

फ०–दर्द कहां है?

प्र०–छाती में।

फ०–अच्छा बतावो वो दर्द किस रंग का है कितना लम्बा चौड़ा उसकी सूरत कैसी है?

प्र०–दाता साहिब यह तो बता नहीं सकता। क्योंकि उसके कोई रंग रूप और शरीर नहीं है।

फ०–दर्द की सूरत रूप रंग आकार न होने पर भी तुम खुद मानते और दूसरों को मनाना चाहते हो ईश्वर आंख से नजर नहीं आता इसलिये उसका वजूद क्यों नहीं मानाजाय?

प्र०–जनाब मेरे दूसरे सवाल का जवाब भी मैंने पालिया। अब एक सवाल रह गया उसका उत्तर कहिये?

फ०–तुम काजी जी के पास किस मतलब से आये।

प्र०–मैं आपके ऊपर फरियाद लेकर आया, आपने मुझ बेकसूर को नाहक सताया।

फ०–तुम इस बात पर विश्वास रखते हो या नहीं कि बिना हुकम खुदावन्द के पत्ता भी दरख्त का नहीं हिलता। जो कुछ होता है उसीकी प्रेरणा से होता है।

प्र०- जी हां यह बात हिन्दू,मुसलिम, ईसाई सब मजहबों के मननीय पुरुष कहते हैं। इसीलिये मैं भी मानता हूं।

फ०–अगर तुम ऐसा मकीदा रखते तो मुझे सजा दिलाने के लिये काजी साहब के पास क्यों फरियाद लाये। जो कुछ हुआ खुदा की मरजी और उसी की तहरीक से हुआ।

प्र०-ये ही तो मेरा सवाल था कि जब खुदा ही सब कुछ करने वाला है तो दोजख (नरक) में डाल कर इन्सान को क्यों सजा दी जाती है।

फ०–तुम्हारी समझ काफूर है। असलियत में तुम जैसों के लिये ही सजा और जजा है। जो सिफ सुनी हुई बात को जुबां से कहदेते हैं और दिल से अमल नहीं करते। यानी तुम अगर आमिल होते तो मुझे चोट लगाने वाला समझ कर सजा दिलाने नहीं आते। खुदा के हुक्म से ऐसा होना समझ कर सबर करके बैठ जाते, इसी तरह जो लोग दिलसे पक्का मकीदा (विश्वास) रखते है कि मैं कुछ करता धर्ता नहीं। जो कुछ होरहा है ईश्वर की प्रेरणा से होरहा है वे लोग न नरक में जाते न स्वर्ग में मुक्त होजाते हैं। और तुम जैसे जुबानी जमा खर्च वालों के लिये ही नरक और स्वर्ग है।

गीता में भगवान फर्माते हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

अर्थात् सबके हृदय में बैठा हुआ ईश्वर ही सब जीवों को माया के अन्तर में जकड़े हुओं को वोही चक्कर दिलाता है।

रामायण में भी यही कहा है।

उमा दारु योषित की नाईं, सबै नचावत राम गुसाईं॥

ऐसा ही कुरान और अंजील कहती है।

प्र०-(पैरों में गिरकर) दाता साहिब मेरा सब संदेह दूर होगया। मुझे अपना मुरीद (शिष्य) बना लिजिये।

काजी जी भी फकीर के मुरीद बनजाते हैं। बाहरे मिट्ठी के ठेले। तीन उपदेश एक साथ मिल गये।

श्रीराम चरित मानस की कथा किस कल्प की ?

[ले० श्री महावीर प्रसाद जी 'बजरंगबली' श्री वास्तव]

गोस्वामी तुलसीदास जी कृत श्रीराम चरित्र मानस में किस कल्प के अवतार का चरित्र का गान किया गया है, इस बात का निर्णय यद्यपि बाल कांड में अवतार हेतु प्रकरण से बिलकुल स्पष्ट है पर तो भी आगे चरित्र भाग में कई संभ्रम उत्पन्न करने वाले प्रसंगों के आजाने से उस निर्णय पर दृढ रहने में बहुत कठिनाई पड़ती है और उन संभ्रम जनक प्रसंगों का यथोचित समन्वय न हो सकने के कारण प्रायः सज्जनों को 'श्रीरामचरित्र मानस' की कथा में कई कल्पों की कथाओं की मिलावट स्वीकार करके सन्तोष करना पड़ता है। इस अड़चन की घनिष्टता से शनैः २ श्रीरामचरित्र मानस के टीकाकारों तथा वक्ताओं के बीचमें 'श्रीराम चरित्र मानस में चार कल्प की कथा की मिलावट मानना' एक प्रसिद्ध समाज गत विचार सा होगया है। 'राम चरित्र मानस के प्रेमी सर्व साधारण में संभ्रम जनक प्रसंगों का समाधान करने में किसी न किसी प्रकार चार कल्प की कथा की मिलावट घटित कर के ही सन्तोष कर लेने की बात बहुत प्रसिद्ध तथा सहज रूप से प्रचलित हो गई है। परंतु यदि यथार्थ में श्रीराम चरित मानस के सच्चे मर्मी जिज्ञासुओं के हृदय से पूछा जाय तो इस प्रकार की कल्पना से पदार्थ में उनका असंतोष ही प्रकट होगा। यहां तक कि कतिपय रामायण के रसिक तो हार कर इस विषय में विचार करना व प्रश्न उठाना ही छोड़ देते हैं। कोई २ सज्जन ग्रंथ के साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक गौरव को स्वीकार करते हुये भी ग्रंथ की ऐतिहासिकता पर इसी कारण सन्देह सूचित करते हैं, अब यथार्थ में उन संभ्रम जनक प्रसंगों का ठीक समन्वय न हो सकने से इस प्रकार के असंतोष तथा स्वतंत्र कल्पनाओं को स्थान मिलना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है। पर प्रभु कृपा के आश्रित होकर श्रद्धा पूर्वक विचार करने से प्रभु की कृपा से उन प्रसंगों का ठीक २ समन्वय होकर सन्देहों का निवारण भी होजाता है। इस लेख में प्रभु कृपा के आश्रित हो मैं इसी विषय पर अपने नवीन विचार प्रकट करूंगा।

संभ्रम जनक प्रसंगों पर विचार करने से प्रथम अवतार हेतु प्रकरण के निर्णय को विस्तार पूर्वक स्पष्ट करना उचित प्रतीत होता है क्योंकि प्रज्ञानतः यही निर्णय ग्राह्य है। परम रम्य कैलाश पर्वत पर शिव पार्वती संवाद में पार्वती जी का प्रश्न है।

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी।
सर्व रहित सब उरपुर बासी॥
नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू।
मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू॥

इसके उत्तर में:-

हरि अवतार हेतु जेहि होई, इदमित्थं कहि जाय न सोई।

इतना कहकर शिवजी पुनः प्रभु के अवतार का प्रसिद्ध कारण वर्णन करते हैं। यथा-

जब जब होइ धर्म की हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाय नहिं बरणी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरणी॥

तब तब प्रभु धरि विविधि शरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा॥
दोहा—असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं विशद यश, राम जन्म कर हेतु॥

इस प्रकार सभी कल्प के अवतारों का सर्व साधारण गत प्रसिद्ध कारण कह कर अब इस प्रसिद्ध कारण की उत्पत्ति कल्प २ में किस प्रकार हुआ करती है इस बात को व्यक्त करने के लिये उदाहरण रूप से दो एक कल्प के अवतारों का प्रश्न उठाते हैं। यथा-

राम जन्म के हेतु अनेका।
परम विचित्र एक ते एका॥
जन्म एक दुई कहौं बखानी।
सावधान सुनु सुमति भवानी॥

इस प्रकार प्रथम जय विजय के शाप का प्रसंग संक्षेप से कह कर जय विजय से संबंध रखने वाले, (अर्थात् जिस अवतार में जय विजय राक्षस कुंभ करण हुये हैं, उस) कल्प के प्रसंग का उपसंहार आगे निम्नलिखित चौपाई से करते हैं।

एक कल्प यहि विधि अवतारा।
चरित्र पवित्र किये संसारा॥

पुनः उस अवतार का उपक्रम, जिसमें जलंधर रावण हुआ है निम्न लिखित चौपाई से उठाते हैं यथा-

एकबार सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥

आगे कई चौपाइयों में उस प्रसंग को भी संक्षेप से स्पष्ट करके पुनः आगे निम्न लिखित चौपाई से इस दूसरे कल्प के प्रसंग का भी उपसंहार करते हैं यथा-

एक जन्म कर कारण येहा।
जेहि लगि राम धरी नर देहा॥

इसके पश्चात् शिवजी तीसरे कल्प के अवतार का प्रसंग निम्न लिखित चौपाई से उठाते हैं-

नारद शाप दीन्ह एकबारा।
कल्प एक तेहि लगि अवतारा॥

शिवजी के मुखसे इतना सुनते ही परमभक्ति परायण नारद जी के मुखसे भगवान के लिये शाप की बात सुनकर पार्वती जी को बहुत आश्चर्य्य हुआ और तत्काल प्रश्न करती भई यथाः-

गिरजा चकित भई सुनि बानी।
नारद विष्णु भक्त पुनि ज्ञानी॥
कारण कौन शाप मुनि दीन्हा।
का अपराध रमा पति कीन्हा॥
यह प्रसंग मोहिं कहहु पुरारी।
मुनी मन मोह आचरज भारी॥

पार्वति जी के इस प्रश्न पर शिवजी ने नारद शाप का प्रसंग विस्तार पूर्वक कहा। इस कथा में नारद जी के मुख से भगवान् को शाप देने के प्रसंग के साथ ही साथ उस कथा के ही अन्तर्गत हर गणों को निश्चर होने के लिये भी नारद जी के शाप को कहा। इस प्रकार नारद शाप के प्रसंग को विस्तार पूर्वक कह कर निम्नलिखित दोहे से इस कल्प के प्रसंग का भी उपसंहार किया यथा-

एक कल्प यहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद, हरि भंजन भुविभार॥

इस प्रकार से उपक्रम व उपसंहार पूर्वक उदाहरण रूप से तीन कल्प के अवतारों के कारण कह कर अब आगे चतुर्थ अवतार की प्रस्तावना विशेष रूप से बांधते हैं यथाः-

अपर हेतु सुनु शैल कुमारी।
कहहु विचित्र कथा विस्तारी॥
जेहि कारण अज अगुन अरूपा।
ब्रह्मभये कोशल पुर भूपा॥

पुनः यह प्रसंग किस अवतार का है? यह

परिचय भी आगे की चौपाइयों में स्पष्ट रूप से दे रहे हैं यथाः-

जो प्रभु बिपिन फिरत तुम देखा।
बंधु समेत धरें मुनि बेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी।
सती शरीर रहिउ बौरानी॥
अजहुं न छाया मिटत तुम्हारी।
तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी॥

तात्पर्य्य यह है कि यह उसी अवतार का हेतु है, जिसमें प्रभु को वनमें फिरते हुये देखकर सती शरीर में पार्वती जी को मोह हुआ था।

अब यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि उपरोक्त अन्य कल्पों के प्रसंगों में चरित्र का विस्तार न करके अवतार हेतुओं का ही वर्णन किया है चरित्र का संकेत मात्र कर दिया है, पर इस चतुर्थ अवतार के प्रसंग में 'तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी' से हेतु वर्णन के साथ ही स्पष्ट रूप से चरित्र कहने की भी सूचना दे दी है। इतना ही नहीं, किन्तु आगे की चौपाई में इस अवतार के चरित्र को विस्तार रूप से कहने की बिलकुल स्पष्ट सूचना दे रहे हैं यथा-

लीला कीन्ह जो तेहीं अवतारा।
सो सब कहिहौं मति अनुसारा॥

प्रथम तो इतने से ही यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि श्रीराम चरित्र मानस में कथा उसी अवतार की है, जिसमें सती को मोह हुआ था, फिर आगे के प्रसंग को भी ध्यान देकर देखिये। उस अवतार का हेतु वर्णन करने में प्रथम मनुशत रूपा के तप व वरदान का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं। पर यह प्रसंग भक्त और भगवान् के बीच रहस्य का प्रसंग है यह कारण भगवान् के प्रेमी भक्तोंके आन्तरिक भक्तिसौष्ठव का पोषक है। पर धर्म संस्थापन असुरों का वध इत्यादि प्रथम कहे हुये सब साधारण गत प्रसिद्ध हेतु का पोषक यह प्रसंग नहीं है। इस कारण इस मार्मिक तथा भक्तों के व्यक्ति गत प्रसंग के साथ ही साथ साधारण समाज गत प्रसिद्ध हेतु को व्यक्त करने के लिये उसी अवतार के दूसरे हेतु के वर्णन में भानु प्रताप की कथा वर्णन की है।

अपूर्ण

विश्वजाल

(ले० श्री "दिनेश")

चुनि-चुनि कंकड़ महल बनाया लोग कहैं घर मेरा रे।
ना घर मेरा ना घर तेरा, चिड़िया रैन बसेरा रे॥

मायापति! यही तो तेरी माया है न! क्या तू ने ही यह माया जाल बिछा रक्खा है? क्या तेरी ही कला का इसमें उद्घाटन है? ओह! बड़ा ही सुन्दर है। मन मोहक भी है तथा सहज ही में फंसा लेने वाला है। खूब बनाया। बड़ा ही रहस्य भरा है ना! मैं तो इसके अस्तित्व के रहस्य को समझ ही नहीं रहा हूं। मानस प्रदेश में इस रहस्य का उद्घाटन करना मेरे लिये एक व्यर्थ प्रयास हो रहा है। आंखों के समक्ष तो सभी कुछ देखता हूं किन्तु उनके वास्तविक अस्तित्व और रूप को समझ ही नहीं सका। देखता हूं इसमें सभी कुछ है, बड़ा आकर्षण है। परन्तु भय क्यों है? यह महाजाल

नहीं, एक सुन्दर वाटिका है मन को खींचने वाले मीठे मीठे फल भी लगे हुए हैं। ज्यों ही किसी पक्षी ने देखा कि इसमें बिना फंसे हुए वह रह ही नहीं सकता और एक बार फंसा कि इस विश्वजाल से निकलना असम्भव तो नहीं किन्तु बड़ा ही दुस्तर हो जाता है। वाहरे चतुर कलाविद्! खूब दिखलाया अपना कला कौशल! बधाई है तुझे तेरी कला-कमनीयता के लिये! मेरी कल्पना यहां पर मूक पड़ जाती है और वाच्य निवृत्त हो जाती है।

अच्छा! एक बात तो बताओ! प्रशंसा तो मैंने खूब की। वस्तुतः तुम प्रशंसा के पात्र हो। परन्तु कहो तो कि समझ बूझ कर यह विश्वजाल क्यों बनाया है! आखिर इसमें किसी को फंसाना तो अवश्य चाहते हो इतने परिश्रम से इस का निर्माण करने के बदले तुझे इससे क्या लाभ है? यह भी तो बताओ कि इस विस्तृत माया जाल में कौन फंसते हैं? विश्व विधाता! यह विश्वजाल एक नाट्यशाला के रूप में है न! अच्छा, इस नाट्य शाला के तुम ही तो चतुर सूत्रधार हो न! तेरे ही इशारे पर तो सारा काम होरहा है। तुम ही संचालक हो पुनः तुम पर ही सारा उत्तर दायित्व है। तुम्हारी आज्ञा से सूर्य निश्चय समय में अपने नियत स्थान में घूमते रहते हैं। उसका सखा चन्द्र भी अपने नियत कर्त्तव्य से कभी च्युत नहीं होता है। जितने तुम्हारे अभिनय-शाला के पात्र हैं सभी अपने अपने कर्त्तव्य (Part) को मुस्तैदी के साथ कर रहे हैं। इतनी मुस्तैदी तो मैंने और कहीं नहीं देखी।

अस्तु तेरे इस बड़े अभिनय की नायिका तो तुम्हारी माया ही है न! उसी का आख्यान तो इस रंग मञ्च पर सब से बड़े महत्व का होता है। जब अभिनय प्रारम्भ होता है तो नायिका अपनी माया के विस्तृत जाल को फैलाती है और तुम (नायक) एक तरीके से नहीं वरन् ८४ लाख तरीके से जीवों को इस माया जाल में फसने के लिये इस रंग मंच पर भेजते हो। परन्तु तारीफ तो इस बात में है कि भेजते समय तुम उनसे इस आशय की प्रतीक्षा भी करवा लेते हो कि जाने पर इस विश्व-प्रपंच में न फंस कर तुम्हारा (सूत्र धार) का ही स्मरण किया करेंगे। वे बेचारे तो प्रतीक्षा प्रलोभन पाने पर कर लेते हैं क्योंकि ऐसा करने पर तुम उन्हें पुनः दूसरीबार यहाँ नहीं भेजना का वचन दे देते हो।

× × ×

देखा, उन्होंने प्रतीक्षा तो करली। पर यहां आने पर क्या करते हैं? जरा इन भोले भाले पात्रों की दशा तो देखो। वे क्या करते हैं कि अपने सूत्र धार के संदेश को भूल कर इस विश्व रंग मञ्च पर एक दूसरा ही अभिनय प्रारम्भ कर देते हैं। देखो तो, नायिका के मायाजाल के ये ही शिकार बन रहे हैं। अब, इन्हें माया फसा लेगी और तरह तरह का इनसे नाच नचा कर अपना मनोरञ्जन करेगी। ये लोग तो अब किसी प्रकार छुटकारा पा नहीं सकते, क्योंकि इस माया रूपी विषय वाटिका में अनेक प्रकार के प्रलोभन हैं-स्त्री, पुत्र, सगे सम्बन्धी, धन, मान ऐश्वर्य, प्रभृति प्रलोभनों में पड़ कर ये बिचारे सभी कुछ भूल गये हैं तथा अपने और पराये मन के ऊपर फूले न समाते हैं। इन्हें तो कुछ वाह्य ज्ञान है नहीं। कवि इन्हों की अज्ञानता पर जाता है:-

माया के मोहक बन की क्या कहूं कहानी परदेशी।
भय है सुन कर हंस दोगे मेरी नादानी परदेशी॥

सृजन बीच संहार छिपा कैसे बतलाऊं परदेशी।
सरल कण्ठ से विषम राग कैसे मैं गाऊं परदेशी॥

\+ + +

जीवन का मधुमय उल्लास और यौवन का हास विलास।
विभव राशि का यह अभिमान एक स्वप्न है स्वप्न अजान॥

श्री (दिनकर)

जीव इसी माया के मोहक वन में आकर पथ भ्रष्ट हो जाते हैं। यही काल माया इन्हें फंसा लेती है और प्रथम तो कुछ क्षणिक सुख का प्रलोभन दिखा कर पीछे असीम दुख, चिन्ता एवं विषाद की जलती अग्नि में तपाता है। तरह तरह की भावनाओं में डाल कर अपार कष्ट देती है परन्तु उन्हें इन कष्टों की क्या खबर! ये तो भोले मृगों की तरह मृग तृष्णा में पड़े हैं। भला मृग कब जानता था कि उसका प्राण वीणा की मधुर लहर के पीछे जाने वाला था। अभागे मृग को दौड़ते दौड़ते जंगल में कष्ट भी हुआ और अन्त में प्राण भी गया। एक बार जो मृग तृष्णा का शिकार हुआ वह उसने अपने नाश काल तक किसी तरह भी छुटकारा पाने को नहीं है।

आखिर क्या देखा, देखा इसी रंगमञ्च पर आंखों के सामने बड़ी दुर्दशा हुई। वही मृग वाली दशा। इन मन्द भाग्यों की दूसरी दशा हो ही क्या सकती है? ओह, बड़ा ही कारुणिक दृश्य था। यह भी देखा, कुछ लोग कभी कभी ऊब कर निकलने की चेष्टा भी करते थे, किन्तु पुनः उसी में फंस जाते थे। वहीं पर नित्य कुत्ते की मौत मरते थे।

कहो सूत्रधार! क्या यह ही कमाल कर दिखलाया? लोगों को कष्ट देने में-कुत्ते की मौत मारने में तो तुम्हारी तारीफ रही न। क्या इसी लिये तूने यह विश्व जाल बिछा रक्खा था? क्या तुम्हारे विश्वजाल का यही रहस्य है? अच्छा लोगों को इतना कष्ट देने के बदले तुझे क्या मिलता है? हां, एक बात है। तुम अपने को निर्दोष सिद्ध करने में कह सकते हो कि मैंने तो पूर्व ही चेतावनी देकर उनसे प्रतीक्षा करवाली थी। हां, मैं मानता हूं-तुम निर्दोष हो-किन्तु फिर भी एक बात पूछता हूं। जरा साफ साफ कहना। कहो तो उनके फंसाने में तेरा गुप्त संकेत मात्र तो अवश्य था न! क्योंकि, प्यारे सञ्चालक! मैंने सुना है कि बिना तेरे आदेश के एक पत्ता भी नहीं हिल सकता है। फिर तुम्हारी आज्ञा बिना यह कैसे हो सकता था? अवश्य ही तुम्हारा भी इस कार्य में बड़ा भाग होगा। अन्यथा ऐसा नहीं हो सकता था यदि तुझे ऐसा करना न था तो क्यों इस विश्व जाल को फैलाया? नहीं बिछाते इस कष्ट दायक जाल को। अब भी तो जरा समेट लो। चतुर कलाविद्! तेरे रहस्य जाल का समझना बड़ा ही कठिन है। मुझे तो असम्भव सा प्रतीत हो रहा है। तुलसी ने भी थक कर यही कहा:-

केशव कहि न जाय का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति,
समुझि मनहि मन रहिए।

परन्तु यह भी सुना है कि तुम इस जाल से उन्हें बचा लेते हो जो तुम्हारे शरण आते हैं। अतएव अब मेरी रक्षा करो।

सदुपदेश

(ले० श्री कृष्ण गोपाल जी माथुर)

भावी जीवन रूपी कपड़े में हम हमारा ही रंग दे सकते हैं। और प्रारब्ध की जमीन में जो हम बोते हैं, वही काटते हैं। व्हीटियर

× × × × ×

प्रत्येक मनुष्य अपनी ही कृतियों का पुत्र है। सर्वेण्टिस

× × × × ×

मनुष्य में उज्ज्वल क्या है, यह हमको ढूंढ़ निकालना चाहिये। या ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिये कि हम में उज्ज्वलता जरूर है।

× × × × ×

प्रकाश पाने के लिये परिश्रम करने वालों की आत्मा के अन्दर ही प्रकाश मौजूद है।

+ × × × ×

हमारे जीवन रूपी सूर्य के प्रकाश में हमेशा एक काला दाग़ होता है, और वह हमारी छाया होती है। आप इस काली छाया से हमेशा दूर रहिये। कारलाइल

× × × × ×

फिर जवान होने से क्या लाभ है? मनुष्य अगर कोशिश करे तो बुढ़ापे में भी जवान जैसा सुन्दर बन सकता है। मधूर रेड केप

× × × × ×

जीवन, कमल पर जल की बून्द के समान अत्यन्त चंचल है। जल्दी चेतो और भवसागर से पार होने के लिये क्षण भर साधुओं का सत्संग करो, यही भवसागर से पार होने की नाव है।

श्रीशंकराचार्य

× × × × ×

एक घड़ी आधी घड़ी या आधी से भी फिर आधी घड़ी साधुओं का संग करने से करोड़ों व्याधियां नष्ट हो जाती हैं। गोस्वामी तुलसीदास।

× × × × ×

जिनको जागना है, वे अभी जाग जावें। यही जागने की वेला है। जब पाँव पसार कर सो जाओगे, तब क्या जागोगे?

× × × × ×

जिनका मन वश में, है वही जगद्गुरु है। जैसे कच्ची छत में जल भरता है, वैसे ही अज्ञानी के मन में कामनाएं इकट्ठी होती हैं। धम्मपद

× × × × ×

भजन

सुरत मतवारी करत किलोल ॥ टेक ॥
पलंगा साज सजी पिय प्यारी,
पिय रस गांठ दई सब खोल ॥
गह गह बांह चले बिन डाली,
धीर धरण कर करिये डोल ॥
पश्चिम दिशा की खोल किवारी,
पिय पद परसत भई री अमोल ॥
तुलसी जगत जाल सब जारी,
डारी डगर वेदन की पोल ॥

२

मैं वारी जाऊं सत्गुरु की मेरा किया भरम सब दूर ॥
चंद चढ़ा सब आलम देखे मैं देखूं भ्रम दूर ॥
हुवा प्रकाश आश गई दूजी ऊगा निर्मल नूर ॥
माया मोह तिमिर सब भागा पाया हाल हजूर ॥
विषय विकार जाल है देता जार किया सब धूर ॥
पीया प्याला सुध बुध बिसरी होगया चकना चूर ॥
हुवा अमर मरै नहीं कबहू पाया जीवन मूर ॥
बन्धन कटा छुटिया जम से किया दर्श मंजूर ॥
ममता गई भई उर समता दुःख सुख डारा दूर ॥
समझै बनै कहां नहीं आवै भयो आनन्द भरपूर ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो बजिया निर्मल नूर ॥

३

काया गढ़ जीतो रे भाई ॥
ज्योति स्वरूपी देव निरंजन वेदन उनको गाई ॥
ओं ररंत अड़े जहां दोऊ दल अजपा नाम सहाई ॥
सुरत सुहागन मिली पिया को तन की तपत मिटाई
कहै कबीर मिले गुरु पूरे शब्द में सुरत मिलाई ॥

४

मुरलिया की धुन सुन के हम से रह्यो न जाय ॥
पांच तत्व का बना पुतला ख्याल रच्यो घट माहिं।
बिना वसंत फूल एक फूला भंवर रह्यो मुरझाय ॥
गगना गरजै बिजली चमके उठती हिय हिलोर।
बिकसन कमल अरु मेघ बलांसै चितवत प्रभु की ओर
लागी लगी तहां मन पहुंचा गैब धुजा फहराय।
कहै कबीर कोई सन्त विवेकी जीवत ही मर जाय ॥

५

पिया ते मैं क्यों कीनो मान ॥ टेक ॥
मोहन आप झरोखा झांके, मैं कीनो अभिमान ॥
लागी लगन गोपाल पिया से, छांड दई कुलकान।
पुरषोत्तम प्रभु आन मिलाओ, नातर तजूं गी प्रान॥

६

आशिक हुवा हूं उसपै जो नजरों से दूर है।
साया उसका यह जग जो कुछ जहूर है॥
जो है ख्याल वहमफ हमसों परे सनम।
मुर्शिद की सैन बैन से हाजिर हजूर है॥
औ साफ उसकी जात का क्यों कर करूं बयां।
क्या ताब है किसी मे अकल शहूर है॥
घायल किया है मेरे तई उसके इश्क ने।
दिल जान उस सनम पै मेरा चूर चूर है॥
यह काम आशकी का सुनो राम कृष्ण से।
पहले फना जो होय तो फिर वही नूर है॥

७

बैठे हरि राधा संग कुञ्ज भवन अपने रंग,
कर मुरली अधर धार सारंग वही गाई है॥
मोहन अति ही सुजान सर्व कला गुण निधान,
एक तान चूक चूक चूक के बजाई है॥
प्यारी अब गह्यो बीन चेर्यो तब गुण प्रवीन,
अति नवीन अति नवीन वोही तान गाई है॥
वल्लभ गिरिधरन लाल रीझ दीनी अंक माल,
भले जू भले दयाल सज्जन सुखदाई है॥

REG DNo. .L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।-)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)		मूल्य नित्य पाठ
४.	वेदोपनिषद्		।-)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥।
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	।)
९.	सत्य शब्द संग्रह	"	॥≈)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	"	-)॥।
११.	शब्द सार संग्रह	"	-)।
१२.	शब्दसंग्रह	"	-)॥
१३.	सारसंग्रह	"	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	"	≈)
१६.	भक्ति चिन्तामणि	"	।≈)
१७.	भगवद्भक्तांक	"	॥≈)
१८.	भगवदंक	"	॥।)
१९.	गवांक	"	१)
२०.	महात्मांक	"	१)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें ।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।

मुद्रक तथा प्रकाशक प्रेमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।